जयभगवान गोयल

रीतिकाल का पुनर्मूल्यांकन

आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली-6

रीतिकाल के मूल्यांकन का आधार मुख्यत: मध्यदेश में उपलब्ध साहित्य ही रहा है, जिसे ह्रासोन्मुखी एवं स्त्रैण मनोवृत्ति का साहित्य कहा जाता रहा है। इधर पंजाब, हरियाणा आदि में रचित ऐसा समृद्ध साहित्य आलोक में आया है, जोकि जागरूक सामाजिक चेतना, युग-परिवेश के अनुरूप नये भाव-बोध एवं उदात्त पौरुष मनोवृत्ति से सम्पन्न है। इसके रचयिता कवियों का बोध रीतिकाव्य के सामान्य कवि के बोध से नितांत भिन्न है। इसमें रीतिकाव्य की शास्त्रीयता एवं शृंगारिकता आदि की प्रमुख प्रवृत्तियां बहुत क्षीण हैं और आध्यात्मिकता-भक्ति एवं वीरता की प्रवृत्तियां अत्यन्त सशक्त हैं। क्षेत्र-विस्तार, सृजन की व्यापक आधार-भूमि, नई सामग्री एवं नई कवि-दृष्टि इस काल के साहित्य के पुनर्मूल्यांकन का पर्याप्त औचित्य प्रस्तुत करती हैं।

रीतिकाल
का
पुनर्मूल्यांकन

डॉ० जयभगवान गोयल
रीडर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
पंजाब यूनिवर्सिटी पोस्ट ग्रेज्यूएट रीजनल सैण्टर
रोहतक

आत्माराम एण्ड संस
दिल्ली - नई दिल्ली - चण्डीगढ़ - जयपुर - लखनऊ

by
Dr. Jai Bhagwan Goyal

Price Rs. 10.00

© 1971, Atma Ram & Sons, Delhi-6

प्रकाशक
रामलाल पुरी संचालक
आत्माराम एण्ड संस
काश्मीरी गेट, दिल्ली-६

शाखाएँ
हौज खास, नई दिल्ली
विश्वविद्यालय क्षेत्र, चण्डीगढ़
चौड़ा रास्ता, जयपुर
१७-अशोक मार्ग, लखनऊ

मूल्य १० रुपये

मुद्रक
रूपाभ प्रिंटर्स, शाहदरा, दिल्ली-३२

समर्पित

भारतीय तथा पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सार्वभौम परिप्रेक्ष्य में
साहित्य समीक्षा को स्थायी प्रतिमान प्रदान करनेवाले
रसवादी आचार्य डॉ० नगेन्द्र को सादर

रीतिकाल के मूल्यांकन का आधार मुख्यत: मध्यदेश में उपलब्ध साहित्य ही रहा है, जिसे ह्रासोन्मुखी एवं स्त्रैण मनोवृत्ति का साहित्य कहा जाता रहा है। इधर पंजाब, हरियाणा आदि में रचित ऐसा समृद्ध साहित्य आलोक में आया है, जोकि जागरूक सामाजिक चेतना, युग-परिवेश के अनुरूप नये भाव-बोध एवं उदात्त पौरुष मनोवृत्ति से सम्पन्न है। इसके रचयिता कवियों का बोध रीतिकाव्य के सामान्य कवि के बोध से नितांत भिन्न है। इसमें रीतिकाव्य की शास्त्रीयता एवं शृंगारिकता आदि की प्रमुख प्रवृत्तियां बहुत क्षीण हैं और आध्यात्मिकता-भक्ति एवं वीरता की प्रवृत्तियां अत्यन्त सशक्त हैं। क्षेत्र-विस्तार, सृजन की व्यापक आधार-भूमि, नई सामग्री एवं नई कवि-दृष्टि इस काल के साहित्य के पुनर्मूल्यांकन का पर्याप्त औचित्य प्रस्तुत करती हैं।

विषय-सूची

अध्याय १

पूर्व प्रवर्तित धारणाएँ एवं पुनर्मूल्यांकन का प्रश्न ९-२१

रीति शब्द की व्याख्या, रीतिकाव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ—शृंगारिकता, रीति तत्व, अलंकृति

अध्याय २

रीतिकाल की अन्य प्रमुख-प्रवृत्तियाँ १. वीरभावना २२-३९

राजस्थानी वीर काव्य, गुरुमुखी लिपि में रचित वीरकाव्य

अध्याय ३

२. भक्ति-भावना ४०-५८

स्वच्छन्दतावादी कवि, रामभक्त कवि, गुरुमुखी लिपि में उपलब्ध रामकाव्य, कृष्णकाव्य—राधाबल्लभ सम्प्रदाय, निंबार्क सम्प्रदाय, चैतन्य सम्प्रदाय, बल्लभ सम्प्रदाय, ललित सम्प्रदाय, सम्प्रदायेतर कवि, गुरुमुखी लिपि में उपलब्ध कृष्ण-काव्य, सूफी काव्य, जैन-साहित्य—दिगम्बर कवि. संत साहित्य, पंजाब एवं हरियाणा का संतकाव्य, सारांश

अध्याय ४

रीतिकाल के कवि का व्यक्तित्व, बोध एवं जीवन-दर्शन ५९-६४

उपसंहार ६५-६९

परिशिष्ट ६९

(क) **आध्यात्मिक एवं भक्ति-भावना की अभिव्यंजना** ७१-९२

दशम ग्रंथ—जापु, अकाल उस्तुति, श्री मुखवाक सवैये, शब्द हजारे

सेनापति (गुरु-शोभा), सुक्खासिंह (गुरु विलास),
संतोखसिंह (गुरु प्रताप सूरज, नानक प्रकाश),
संतरेण (गुरु नानक विजय, मन प्रबोध, वचन संग्रह)
संत निश्चलदास (विचार सागर)

(ख) **वीररसात्मक अभिव्यंजना** ९२-११२
दशम ग्रंथ (अपनी कथा, चण्डी चरित, उक्ति विलास,
चण्डी चरित्र द्वितीय, कृष्णावतार)
सेनापति (गुरु-शोभा)
अणीराय (जंगनामा गुरु गोबिंदसिंह)
हीर (गुरु गोबिंद बावनी)
सुक्खासिंह (गुरु विलास)
संतोखसिंह (गुरु प्रताप सूरज)
संतरेण (गुरु नानक विजय)
केशोदास (वार अमरसिंह)

(ग) **सहायक ग्रंथ सूची** ११३-११५

१

पूर्व प्रवर्तित धारणाएँ एवं पुनर्मूल्यांकन का प्रश्न

'पुनर्मूल्यांकन' अथवा 'नया मूल्यांकन' नाम से इधर कई पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। इन शब्दों से कुछ ऐसा आभास मिल सकता है कि उस विषय पर अब तक जो कुछ भी कहा या लिखा गया है, वह गलत था या बासी हो चुका है और अब जो कुछ कहा जा रहा है, वह ही सही और ताज़ा है। 'रीतिकाल का पुनर्मूल्यांकन' शीर्षक से भी कुछ इस तरह की भ्रांति हो सकती है, इसलिए मैं आरम्भ में ही यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि इस प्रकार के दंभ को पालने का साहस मेरा नहीं है। मेरा वह दावा भी नहीं है कि जो कुछ भी 'रीति काल' के सम्बन्ध में आज तक कहा गया है, वह गलत है।

हम सब इस तथ्य से परिचित हैं कि हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखने का कार्य जिस समय आरम्भ हुआ, उस समय हिन्दी साहित्य से सम्बन्धित बहुत-सी सामग्री उपलब्ध नहीं थी, और जो थी, उसमें से बहुत-सी का सही और सर्वांगीण मूल्यांकन नहीं हो सका था। ज्यों-ज्यों नवीन सामग्री सामने आती गई और पहले से प्राप्त सामग्री का समुचित अध्ययन हुआ, पूर्व प्रवर्तित धारणाओं में निरन्तर परिवर्तन अथवा संशोधन होता गया। हिन्दी के 'वीरगाथाकाल' से 'आदिकाल' के नामकरण तक पहुँचने की कहानी इसका ज्वलंत उदाहरण है। पहले अपभ्रंश को अलग भाषा ही नहीं माना जाता था, उसे 'पुरानी हिन्दी' या 'प्राकृताभास हिन्दी' घोषित किया गया था। लेकिन बाद में उसकी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित हुई। अपभ्रंश का प्रचुर साहित्य प्रकाश में आया तथा हिन्दी भाषा और साहित्य को कुछ स्पष्टता मिली। 'वीरगाथा काल' के अन्तर्गत रखी जाने वाली रचनाओं की सही स्थिति का भी पता चला और जो रचनाएँ उस काल की थीं, पर अज्ञात थीं, या किसी कारणवश साहित्य की परिधि में से निकाल दी गई थीं, उन्हें भी वहाँ उचित स्थान दिया गया और इस तरह शुक्ल जी द्वारा चर्चित 'वीरगाथाकाल' का चित्र अधिक स्पष्ट होकर सामने आया। उसके बाद भी हिन्दी में जो इतिहास ग्रंथ लिखे गए या लिखे जा रहे हैं उन्हें भी सर्वथा पूर्ण या निर्दोष नहीं कहा जा सकता। 'वैज्ञानिक' नाम से लिखे जाने वाले इतिहास भी अवैज्ञानिक सिद्ध हुए हैं।

इन इतिहास ग्रंथों की भ्रांत धारणाओं या विवेचन की सीमाओं को न भी छुआ जाए तो भी एक बात तो स्पष्ट है कि ये ग्रन्थ अपने में संपूर्ण साहित्य-सामग्री का समावेश नहीं कर पाए हैं।

हिन्दी में हर साल बड़ी संख्या में शोध-प्रबन्धों-निबन्धों का प्रकाशन हो रहा है और इन प्रयासों से बहुत-सी उपयोगी सामग्री सामने आई है। लेकिन दुःख इस बात का है कि इतिहासकार उसी पुरानी लकीर को पकड़े हुए हैं। एक को लेकर दूसरा और दो को लेकर तीसरा इतिहास ग्रन्थ भी लिखा जा रहा है। पिछले २०-२५ वर्षों में जो नई सामग्री सामने आई है, उसे इतिहास ग्रन्थों में समाविष्ट करके इतिहास को सर्वांगीण एवं सही रूप देने की चेष्टा बहुत कम दिखाई देती है।

'वीरगाथाकाल' की चर्चा करते हुए शुक्ल जी द्वारा उद्धृत १२ रचनाओं का उल्लेख अभी भी वहाँ उसी तरह किया जाता है। साथ में यह भी कह दिया जाता है कि अमुक रचना अप्रामाणिक है, अमुक बाद की, अमुक संदिग्ध, अथवा अमुक नोटिस-मात्र है। यह सब कहने और लिखने वाले इतिहासकार भी प्रायः इनका परिचय उस काल के अन्तर्गत ही दिए जा रहे हैं।

जहां तक 'रीतिकाल' का सम्बन्ध है, इस युग के साहित्य पर कई दृष्टियों से काफी-कुछ लिखा जा चुका है। कई प्रवृत्तियों को प्रधान मानकर विद्वानों ने कई तरह के नाम भी रखे हैं और इसकी काल-सीमा का निश्चय करने में भी काफी वाद-विवाद चलता रहा है; पर मेरी धारणा है कि इस काल के इतिहास के सम्बन्ध में भी अभी तक वैसी ही अपूर्णता बनी हुई है जैसी कि 'आदिकाल' के सम्बन्ध में बनी हुई थी। बहुत-सी सामग्री ऐसी है, जो पहले से उपलब्ध थी, लेकिन उसे इस युग के साहित्य में ठीक से स्थान नहीं मिला है; और बहुत-सी सामग्री इधर ऐसी प्रकाश में आई है—आ रही है, जो इतिहास-ग्रन्थों में अभी तक स्थान नहीं पा सकी है और इसलिए उसकी अपूर्णता बनी हुई है।

यहां मेरा उद्देश्य इसी सामग्री की ओर ध्यान आकर्षित करने का है। मेरे अध्ययन के क्षेत्र में कुछ सामग्री ऐसी आई है, जिसे मैं समझता हूँ कि उसे इस काल की परिधि में समुचित स्थान मिलना चाहिए और मेरा यह विश्वास है कि उस सामग्री के समावेश से स्वतः ही इस काल के पुनर्मूल्यांकन का प्रश्न उठ खड़ा होता है।

'रीति' शब्द की व्याख्या

हिन्दी-साहित्य का काल विभाजन करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने संवत् १७०० से १९०० तक के साहित्य को 'रीति काल' का नाम दिया है। शुक्ल जी ने 'रीति' शब्द को अलग से स्पष्ट नहीं किया है, इसलिए 'रीति' से

उनका क्या अभिप्राय था, इस पर कुछ मतभेद भी प्रकट किया गया है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी शुक्ल जी के मत को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं—"यहां साहित्य को गति देने में अलंकार-शास्त्र (काव्य-शास्त्र) का ही ज़ोर है, जिसे उस काल में 'रीति', 'कवित्त रीति' या 'सुकवि रीति' कहने लगे थे। संभवतः इन्हीं शब्दों से प्रेरणा पाकर शुक्ल जी ने इस श्रेणी की रचनाओं को 'रीति काव्य' कहा है।"

डा० नगेन्द्र तथा विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने भी 'रीति' को 'काव्य रीति' का ही संक्षिप्त रूप बताया है। 'हिन्दी साहित्य के बृहत् इतिहास' (षष्ठ भाग) में डा० सत्यदेव चौधरी ने अनेक रीति कवियों की उक्तियों के आधार पर 'रीति' का अर्थ—'कवित्त रीति', 'कवि-रीति', 'काव्य-रीति', 'छन्द-रीति', 'अलंकार-रीति', 'मुक्तक-रीति', 'वर्णन पंथ', 'कवि-पंथ' और 'कविता-पंथ' आदि किया है और इस तरह 'काव्य-रीति' या 'कवि-पंथ' को भी पर्याय सिद्ध किया है और काव्य-शास्त्र की बजाय उसे शास्त्रीय-विधान की वाचक बताया है।"[2] यह भी कहा गया है कि शुक्ल जी इस शब्द के आविष्कारक नहीं थे; स्वयं 'रीति कवियों' ने इस शब्द का प्रयोग बहुधा किया है।[3]

डा० जगदीश गुप्त 'रीति' शब्द को व्यापक अर्थ में ग्रहण करते हुए लिखते हैं—'रीति शब्द हिन्दी-साहित्य के उत्तर-मध्यकाल की उस प्रेरक एवं व्यापक प्रवृत्ति को व्यक्त करता है, जिसके भीतर कला-कौशल तथा शृंगार-प्रियता आदि सबका किसी न किसी प्रकार अन्तर्भाव हो जाता है और अन्ततः उनकी तुलना में यही अधिक महत्त्वपूर्ण प्रतीत होने लगता है।"[4] उनका कथन है कि 'यह युग रीति-पद्धति का ही युग था; रीति-काव्य कहने से प्रायः कोई भी महत्वपूर्ण वस्तुगत

---

१. हिन्दी-साहित्य, पृ० २९१

२. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास (भाग षष्ठ), पृष्ठ १७९-१८०

३. 'रीति सुभाषा कवित्त की बरनत बुध अनुसार।' (चिंतामणि)
'सो विश्रब्ध नवोढयो बरनत कवि रस रीति।' (मतिराम)
'अपनी अपनी रीति के काव्य और कवि रीति।' (देव)
'वरनन् मनरंजन जहां रीति अलौकिक होइ।' (सुरति मिश्र)
'छंद रीति समुझै नहीं बिन पिंगल के ज्ञान।' (सोमनाथ)
'काव्य की रीति सिखी सुकवीन्ह सों।' (दास)
'थोरे क्रम क्रम ते कही अलंकार की रीति।' (दूलह)
'ताहि को रति कहत है, रस ग्रंथन की रीति।' (पद्माकर)
'कवित रीति कछु कहत हों, व्यंग्य अर्थ चित लाय।' (प्रतापसाहि)

४. रीति काव्य, पृष्ठ १७

विशेषता उपेक्षित नहीं होती।"[१] इस तरह उन्होंने शृंगारिकता तथा आलंकारिकता आदि का भी, जो कि इस युग की अन्य प्रमुख प्रवृत्तियां मानी गई हैं, समावेश 'रीति' के ही अन्तर्गत कर लिया है और भौगोलिक क्षेत्र-विस्तार एवं समसामयिक काव्य-धाराओं से सम्पर्क एवं सापेक्षित स्थिति का निरूपण करते हुए 'रीति' तत्व को व्यापक अर्थ में ग्रहण करके इस युग के लिए इसी नाम का समर्थन किया है।"[२]

'रीति-काव्य' की प्रमुख-प्रवृत्तियाँ

साहित्य-रचना के तीन प्रमुख केन्द्र मान्य हैं— राज्याश्रय, धर्माश्रय एवं लोकाश्रय। इसमें ये सभी विद्वान एक मत हैं कि 'रीति कविता राजाओं और रईसों के आश्रय में पली है;"[३] जिसके परिणाम स्वरूप उसमें रीति-रचना, शृंगारिकता एवं अलंकरण की प्रमुखता है। प्रकृति, परम्परा और प्रवृत्ति की दृष्टि से डा० जगदीश गुप्त हिन्दी के रीतिकाव्य को सुदूर अतीत के प्रवाहित 'राज-पथ' का साहित्य मानते हैं। उनका मत है कि 'हिन्दी का सम्पूर्ण रीति कालीन साहित्य ऐसे राजसी-सामन्ती ह्रासोन्मुखी युग की सृष्टि है, जिसमें स्वतन्त्र त्रेता ऋषि धीरे-धीरे राजकृपाकांक्षी सभा-पंडित या राजगुरु बन गए थे।"[४] उनके अनुसार राज्याश्रय रीतिकाव्य का मेरुदण्ड है और शास्त्रीयता, शृंगारिकता एवं अलंकरण-प्रियता इसकी प्रमुख प्रवृत्तियाँ हैं।'[५] निःसंदेह रीतिकाव्य के समीक्षकों की दृष्टि शास्त्रीयता (रीति-ग्रंथ रचना), शृंगारिकता एवं अलंकृति के वृत्तों में ही घूमती रही है। राज्याश्रय से सम्बन्धित 'वीरभावना' का भी एक गौण प्रवृत्ति के रूप में उल्लेख ये समीक्षक यत्र-तत्र यदा-कदा कर जाते हैं।

इस सम्बन्ध में डा० भगीरथ मिश्र का दृष्टिकोण अपेक्षाकृत अधिक व्यापक और स्वस्थ है। उनका कथन है कि हिन्दी साहित्य के उत्तर मध्ययुग में काव्य की धाराओं का **बहुमुखी प्रवाह फूट पड़ा। संत काव्य** का विविध सम्प्रदायों के प्रवर्तकों और प्रचारकों ने **प्रचुर भंडार भरा**। प्रेमाख्यान परम्परा को लेकर भी **अनेक ग्रंथ लिखे गए**।···इसके साथ ही साथ **सगुण-भक्ति धाराओं का भी वेग उमड़ा** और अनेक कवियों ने **राम और कृष्ण की लीला, भक्ति** और **माधुरी** को लेकर **असंख्य** ग्रन्थों की रचना की।···इस युग में वीर काव्य भी बड़ी प्रचुरता

---

१. रीति काव्य, पृ० १७

२. वही

३. डा० नगेन्द्र : रीति काव्य की भूमिका, पृष्ठ १४३-१४४

४. रीतिकाव्य, पृ० १-२

५. वही

से लिखा गया।"[१]

यहां उन्होंने रीतिकालीन सगुण एवं निर्गुण भक्ति के काव्य तथा वीर काव्यों को समुचित महत्व दिया है। लेकिन इसके अनन्तर वे भी यही स्वीकार करते हैं,—"इन भक्त-काव्यों पर श्रृंगारकाल का प्रभाव बहुत गहरा पड़ा। ···वास्तव में यह युग ही श्रृंगार का युग था।"[२] ···वीर काव्यकारों के सम्बन्ध में भी वे लिखते हैं कि प्रायः इस प्रकार के काव्य लिखने वाले कवियों ने भी रीति-श्रृंगार काव्य से सम्बन्धित काव्य ही अधिक लिखे।"[३] और अन्त में वे अपना निश्चित मत देते हैं—"इस प्रकार यह स्पष्ट है कि रीति या श्रृंगार-काव्य लिखना उस समय की एक व्यापक परिपाटी बन गई थी।"[४] डा० जगदीश गुप्त ने इस युग की निर्गुण-भक्ति तथा वीर रसात्मक प्रवृत्तियों का संक्षेप में उल्लेख अवश्य किया है, लेकिन इनका विश्लेषण उन पर 'रीति तत्व' का प्रभाव और उसकी प्रमुखता दिखाने के प्रयोजन से ही किया गया है।

हिन्दी में इस युग के साहित्य को लेकर जो भी शोध कार्य हुआ है या समीक्षात्मक ग्रन्थ लिखे गए हैं, उनमें भी लेखकों की दृष्टि 'रीति', 'श्रृंगार', 'अलंकरण' की तीन प्रमुख प्रवृत्तियों पर ही केन्द्रित रही है। जबकि इन प्रवृत्तियों को लेकर 'रीतिकालीन काव्य में लक्षणा का प्रयोग' (डा० अरविन्द पांडेय), 'हिन्दी के रीतिकालीन अलंकार ग्रन्थों पर हिन्दी का प्रभाव' (डा० कुन्दनलाल जैन), 'हिन्दी रीति परम्परा के प्रमुख आचार्य' (डा० सत्यदेव चौधरी), 'रीतिकालीन अलंकार साहित्य का शास्त्रीय-विवेचन' (डा० ओमप्रकाश शर्मा), 'मध्यकालीन हिन्दी अलंकृत कविता और मतिराम' (डा० त्रिभुवनसिंह), 'ब्रजभाषा का नायिका-भेद' (प्रभुदयाल मित्तल), 'हिन्दी काव्य-शास्त्र का इतिहास' (डा० भगीरथ मिश्र), 'हिन्दी अलंकार-साहित्य' (डा० ओमप्रकाश), 'ब्रजभाषा रीति-शास्त्र-कोश' (जवाहरलाल चतुर्वेदी), 'हिन्दी-काव्य-शास्त्र का विकास' (डा० रमाशंकर शुक्ल रसाल), 'नायक-नायिका भेद' (डा० राकेश गुप्त), 'हिन्दी काव्य-शास्त्र में दोष विवेचन' (डा० रणवीरसिंह), 'रसाभास का विवेचन—हिन्दी रीति-काव्य के परिवेश में' (डा० प्रशान्त कुमार), 'हिन्दी-काव्य में नख-शिख वर्णन' (डा० गिरिराज किशोर), 'हिन्दी-काव्य-शास्त्र में श्रृंगार रस' (डा० रामलाल वर्मा), 'नायिका-भेद उद्भव और विकास' (डा० कृष्णानन्द दीक्षित), 'हिन्दी-काव्य-शास्त्र में रस-सिद्धान्त' (डा० सच्चिदानन्द चौधरी),

---

१. हिन्दी-साहित्य का बृहत् इतिहास, भाग ६, पृष्ठ ३९७
२. वही
३. वही
४. वही

'रीतिकालीन कवियों की प्रेम-व्यंजना' (डा० बच्चनसिंह), 'रीतिकालीन कविता और शृंगार-रस का विवेचन' (डा० राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी), 'मध्यकालीन शृंगारिक प्रवृत्तियां' (श्री परशुराम चतुर्वेदी), 'हिन्दी-काव्य-धारा में प्रेम-प्रवाह' (श्री परशुराम चतुर्वेदी), 'हिन्दी-साहित्य का अतीत-शृंगारकाल' (विश्वनाथ-प्रसाद मिश्र), 'हिन्दी-काव्य में शृंगार-परम्परा और कवि बिहारी' (डा० गणपतिचन्द्र गुप्त), 'रीति-काव्य में रूप-चित्रण' (डा० आर० पी० मित्तल), 'रीतिकालीन शृंगार भावना के स्रोत' (डा० सुधीन्द्र कुमार), 'मध्यकालीन हिन्दी-काव्य में शृंगार सामग्री' (डा० मालतीदेवी माहेश्वरी), 'हिन्दी-काव्य में विरह-वर्णन' (डा० मिशीने एन० के०) आदि अनेक ग्रन्थों की रचना हुई, वहाँ भक्ति और वीरता को लेकर—'रीतिकालीन निर्गुण भक्ति-काव्य' (डा० पंजाबीलाल शर्मा), रीतिकालीन कविता में भक्ति-तत्व' (डा० ऊषा पुरी), एवं 'हिन्दी वीर-काव्य' (डा० टीकमसिंह तोमर) आदि कुछेक गिने-चुने ग्रन्थ ही लिखे जा सके।

इसका मुख्य कारण यही था कि शोधकों की दृष्टि ब्रज, अवध तथा राजस्थान आदि तक के भौगोलिक क्षेत्र में उपलब्ध साहित्य-सामग्री, वह भी मुख्यतः राज्याश्रय में प्रणीत काव्य तक ही सीमित रही। इन क्षेत्रों से बाहर भी उस युग में ब्रज-भाषा में प्रचुर मात्रा में साहित्य लिखा गया, इसकी ओर प्रायः इन विद्वानों का ध्यान नहीं गया। हरियाणा एवं पंजाब में गुरुमुखी लिपि में रचित ब्रजभाषा के सैंकड़ों काव्य-ग्रन्थ उपलब्ध हुए हैं, जो इसी काल की सीमा में पड़ते हैं। गुजरात, महाराष्ट्र, आसाम, तमिलनाड तक में भी ब्रजभाषा की काव्य-सामग्री प्राप्त हुई है। दूसरे, राज्याश्रयों से बाहर अनेक सम्प्रदायों, मतों, पंथों के धर्माश्रय में भी इस युग में प्रचुर काव्य लिखा गया, उसकी ओर भी यथोचित ध्यान नहीं दिया गया है। निस्सन्देह इस सम्पूर्ण साहित्य-निधि की परीक्षा एवं समुचित मूल्यांकन की अपेक्षा है, तभी हम इस युग का सही रूप पा सकेंगे। लेकिन इससे पूर्व कि मैं इस विषय पर प्रकाश डालूं, रीतिकालीन शृंगारिकता, शास्त्रीयता एवं अलंकरण आदि की प्रवृत्तियों का संक्षिप्त विवेचन अप्रासंगिक न होगा।

शृंगारिकता

डा० नगेन्द्र ने शृंगारिकता को रीति काव्य के स्नायुओं में बहने वाली रक्त-धारा कहा है। उनका मत है कि "इस युग की कविता का नवदशांश से भी अधिक शृंगारैक प्रधान है।"[२] डा० भगीरथ मिश्र तथा अन्य विद्वान भी

---

१. रीतिकाव्य की भूमिका, पृष्ठ १७२

२. वही

इस मत का समर्थन करते हैं कि "शृंगारिकता की प्रवृत्ति रीति-काव्य में सर्वत्र प्रचुरता के साथ परिलक्षित होती है।"[1] शृंगार-रस की अतिशयता को देखकर ही कुछ विद्वानों ने इस काल को 'शृंगारकाल' का नाम भी दिया है। डा० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने अनेक तर्क देकर इस मत की स्थापना की है। इस धारणा को प्रस्तुत करने वाले विद्वानों का कथन है कि (क) भावपक्ष की दृष्टि से इस युग के साहित्य में शृंगार-रस की ही प्रधानता है; (ख) कवियों ने शृंगार रस का ही सर्वाधिक सांगोपांग-सर्वांगीण निरूपण किया है; यहां तक कि नायिका भेद नख-शिख आदि एक-एक अंग को लेकर स्वतन्त्र ग्रन्थों की रचना की गई। नायिका के 'तिल' तक को लेकर 'तिल शतक' लिख दिए गए; (ग) रीति-रस-ग्रन्थों में भी मुख्य विषय शृंगार है; (घ) अलंकार ग्रन्थों में भी उदाहरण प्रायः शृंगार के ही हैं, और वे ही इनकी मौलिकता हैं। (ङ) इस युग के भक्ति-साहित्य में भी शृंगारिकता विपुल मात्रा में है; और (च) वीरकाव्य का आधार भी प्रायः शृंगारिकता है। उनका कहना है कि इस युग का शायद ही कोई ऐसा कवि होगा, जिसने शृंगारिक काव्य न लिखा हो; (छ) भूषण जैसे वीररस के कवि भी इससे अछूते नहीं हैं—इत्यादि।

इस काल को 'रीतिकाल' का नाम देने वाले आचार्य रामचन्द्र शुक्ल भी रस की दृष्टि से इस नाम के औचित्य को स्वीकार करते हैं।[2] इस युग के शृंगारिक काव्य के स्वरूप का भी विद्वानों ने विशदता से विवेचन किया है और उनका निश्चित मत है कि वह प्रायः शास्त्रीय आधार को लेकर लिखा गया है और उसमें कामुकता और रसिकता की प्रधानता है। डा० नगेन्द्र का कथन है कि "उसमें विलास की सरिता दोनों कूलों को तोड़कर बह रही है।"[3] —"उसमें अप्राकृतिक गोपन अथवा दमन से उत्पन्न ग्रन्थियाँ नहीं हैं। उसमें स्वीकृत रूप से शरीर-सुख की साधना है, जिसमें न आध्यात्मिकता का आरोप है न वासना का उन्नयन अथवा प्रेम को अतीन्द्रिय रूप देने का उचित-अनुचित प्रयत्न।"[4] कुछेक कवियों को छोड़कर इनके प्रेम में एकनिष्ठता न होकर विलास की रसिकता ही प्रायः मिलती है। इस युग के "प्रतिनिधि कवि बिहारी, मतिराम, पद्माकर रसिक ही थे, प्रेमी नहीं थे।"[5]

इस युग के शृंगार-काव्य की आधार भूमि संस्कृत काव्य-शास्त्र, काम-शास्त्र तथा प्राकृत और संस्कृत का शृंगारिक काव्य रहा है और उसकी प्रेरणा का मुख्य

---

१. हिन्दी साहित्य, भाग २, पृ० ३९८
२. हिन्दी-साहित्य का इतिहास, पृ० २६८
३. रीतिकाव्य की भूमिका, पृ० १७३
४. वही
५. वही

केन्द्र था—तत्कालीन विलासपूर्ण सामन्तीय वातावरण।

इन कवियों ने संयोग एवं वियोग दोनों पक्षों का विस्तृत निरूपण किया है। संयोग के अन्तर्गत नायक-नायिका (आलंबन) के रूप-गुण, हाव-भाव आदि का चित्रण, सखी, दूती एवं षट्ऋतु (उद्दीपन) और अनुभाव, सात्विक भाव, नायिकाओं की चेष्टाएँ, स्वभाव, अलंकार आदि का मनोहर वर्णन अत्यन्त विस्तार से किया गया है। वियोग-पक्ष में पूर्वराग, मान, प्रवास आदि विभिन्न भेद, पूर्वानुराग के श्रवण, चित्रदर्शन, प्रत्यक्ष दर्शन आदि साधन, मान-मोचन के अनेक उपाय और वियोगजन्य काम-दशाओं आदि का वर्णन किया है। इन कवियों का मुख्य प्रतिपाद्य नायिका-भेद, नख-शिख, संयोग, अनुभाव, वियोग, मान, प्रवास, ऋतुवर्णन ही हैं और उसमें सर्वत्र ऐहिकता एवं शरीर सुख की आकांक्षा परिलक्षित होती है। वियोग वर्णन में अतिरंजना एवं ऊहात्मकता से भी काम लिया गया है।

रीति-तत्व

डा० नगेन्द्र ने संपूर्ण हिन्दी-साहित्य का सर्वेक्षण करके यह सिद्ध किया है कि उसमें " 'रीति-तत्त्व' का समावेश लगभग उसके जन्म से ही मिलता है"; [1] लेकिन रीतिकाल में आकर 'रीति' काव्य की एक प्रमुख प्रवृत्ति बन गई थी, इस संबंध में विद्वानों में दो मत नहीं हैं। विद्वानों की यह भी धारणा है कि 'रीति-रचना' इस युग में एक 'कवि-पंथ' या 'कवि-रीति' बन गई थी। विशेष रूप से उन कवियों के लिए जिन्होंने राज दरबारों या सभाओं के लिए काव्य-रचना की; और यह प्रवृत्ति इतनी प्रभावशाली हो गई थी कि स्वच्छन्द रूप से काव्य-रचना करने वाले कवि भी इसके प्रभाव से मुक्त नहीं रह सके।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने इतिहास में ५७ 'रीतिबद्ध' तथा ५२ रीति-मुक्त कवियों का परिचय दिया है। दोनों वर्गों के और भी बहुत-से कवि हैं जो उनके इतिहास में स्थान नहीं पा सके हैं। 'हिन्दी-साहित्य के बृहत् इतिहास' में हिन्दी के ३८ प्रकाशित, ४२ हस्तलिखित प्राप्य तथा ४१ इतिहासों में उल्लिखित किन्तु अप्राप्य रीति-ग्रंथों की सूची दी गई है।[2] अर्थात् कुल ग्रंथ संख्या १२१ है। एक अन्य स्थान पर ६७ रस ग्रंथों[3] और ३७ अलंकार ग्रंथों[4] के नाम दिए गए हैं। इनके अतिरिक्त कुछ विविध काव्यांगों का निरूपण करने वाले एवं कुछ पिंगल निरूपक ग्रंथ भी हैं।[5] डा० जगदीश गुप्त ने भी कुछ रस-निरूपक, अलंकार-

---

१. रीति काव्य की भूमिका, पृ० १८८
२ हिन्दी-साहित्य का बृहत् इतिहास, भाग षष्ठ, पृ० १७३-१७४
३. वही, पृ० ३८६-३८८
४. वही, पृ० ४४०-४७८
५. वही, पृ० २९८-२९९

निरूपक तथा विविधांग निरूपक ग्रंथों का उल्लेख किया है।[1] किसी-किसी समीक्षक ने तो ऐसे ग्रंथों की संख्या 'असंख्य' कह दी है, पर वस्तुस्थिति यही है कि काफी बड़ी संख्या में रीति-ग्रंथ इस युग में लिखे गए। उनमें से बहुत-से अनुपलब्ध हैं।

इनमें अलंकार एवं रस-विषयक ग्रंथ ही अधिक हैं। काव्य के अन्य अंगों अथवा सभी अंगों को लेकर भी कुछ रीति-ग्रंथ लिखे गए, पर ऐसे ग्रंथों की संख्या बहुत कम है। केशव, मतिराम, भूषण, श्रीधर, रसिक सुमति, रघुनाथ, गोविंद, दूलह, रसरूप, रामसिंह, सेवादास, बैरीसाल, रामसहाय, पद्माकर आदि प्रमुख अलंकार-सम्बन्धी ग्रंथ लिखने वाले आचार्य हैं, तथा सुन्दर, चिंतामणि, तोष, मतिराम, देव, यशवन्तसिंह, रामसिंह, पद्माकर, बेनी प्रवीन, रसिकगोविंद नवीन कवि आदि ने रस-ग्रंथ लिखे हैं। कुलपति मिश्र, देव, सुरति मिश्र, कुमारमणि, श्रीपति, सोमनाथ, भिखारी दास, प्रतापसाहि आदि इस युग के अन्य प्रमुख आचार्य हैं।

इस युग में इन व्यक्तियों ने कवि एवं आचार्य के उभयी-कर्म को निभाने का प्रयत्न किया है और इस दृष्टि से उन्होंने दण्डी, उद्भट, वामन, आनन्दवर्धन, जयदेव, विद्याधर, विश्वनाथ, भानुदत्त, रूप गोस्वामी एवं पंडितराज जगन्नाथ आदि संस्कृत के प्राचीन कवि-आचार्यों की परम्परा का अनुकरण किया है। परन्तु आचार्यत्व की दृष्टि से हिन्दी के रीति कवि अपने पूर्ववर्ती संस्कृत के आचार्यों के 'अनुकर्ता' मात्र हैं। उनका आचार्यत्व निश्चय ही उनकी अपेक्षा अत्यंत निम्न कोटि का है। रस-ग्रंथों में इन्होंने प्रायः 'शृंगार-तिलक' एवं 'रस-मंजरी' का अनुकरण किया है और अलंकार ग्रंथों में 'चन्द्रालोक' (जयदेव) तथा कुवलयानंद (अप्पय दीक्षित) का। जिन ग्रंथों में सभी काव्यांगों का निरूपण हुआ है, वे प्रायः 'साहित्य-दर्पण' (विश्वनाथ) और 'काव्य-प्रकाश' (मम्मट) पर आधारित हैं। रस-ग्रंथों में नायिका-भेद और नख-शिख निरूपण ही अधिक हुआ है।

इन कवि-आचार्यों के संबंध में अक्सर यह कहा जाता रहा है कि वे न तो शास्त्रकार थे न शास्त्र-भाष्यकार। उनमें सैद्धान्तिक विवेचन का आग्रह कम था, परंपरा का निर्वाह मात्र करने की इच्छा अधिक। यही कारण है कि वे किसी आधारभूत काव्य-सिद्धांत का प्रवर्तन नहीं कर सके और न ही किसी पूर्व-प्रवर्तित सिद्धांत की कोई मौलिक व्याख्या ही प्रस्तुत कर सके। उनके आचार्यत्व के संबंध में डा० नगेन्द्र के ये शब्द उल्लेखनीय हैं—उनका (रीति-कवि, आचार्यों का) रीति निरूपण भी वास्तविक आलोचना न होकर आलोचनाभास ही कहा जा

---

१. रीति काव्य, पृ० ९७-९८

सकता है। ···इन्होंने अपने दायित्व को गम्भीरतापूर्वक नहीं ग्रहण किया।··· परिणामतः बेचारे उचित व्यवस्था भी नहीं कर पाए, मौलिक उद्भावनाएँ करना तो दूर की बात थी।—इनका रीति निरूपण वर्णनात्मक ही रह गया, विवेचनात्मक नहीं हो पाया।"[1] वस्तुतः इनके आचार्यत्व के संबंध में विद्वानों में दो मत नहीं हैं। स्वयं आचार्य शुक्ल का कहना है "आचार्यत्व के लिए जिस सूक्ष्म-विवेचन और पर्यालोचन-शक्ति की अपेक्षा होती है, उसका विकास इस युग में नहीं हुआ।—काव्यांगों का विस्तृत विवेचन, तर्क द्वारा खंडन-मंडन, नए-नए सिद्धांतों का प्रतिपादन आदि कुछ भी न हुआ।"[2] इसलिए वे उन्हें 'तीसरी कोटि' के आचार्य मानते हैं, जिन्होंने सरस उदाहरणों के साथ संस्कृत में प्राप्त काव्य-शास्त्रीय सामग्री को हिन्दी में प्रस्तुत किया। डा० जगदीश गुप्त इन रीति-ग्रंथों के निर्माण में आचार्यत्व प्रदर्शन के स्थान पर कवि-शिक्षा को मूल-प्रेरक भाव मानने के पक्ष में हैं।

इस युग में पंजाब में भी गुरुमुखी लिपि के माध्यम से कुछ रीति-ग्रंथ लिखे गए। 'साहित्य-शिरोमणि' (कवि निहाल), 'अलंकार-सागर-सुधा' (टहलसिंह), 'सभा-मंडल' (फ़तेसिंह आहलुवालिया), 'सुब्रित प्रस्तारणव' (सीतल), 'छंद-रत्नावली' (हरिराम दास), 'दोहरा भेदावली' (निहाल), 'पिंगल-दर्पण' (अज्ञात), 'छंद-बोधनी' (ज्ञान राम), 'श्री निहालसिंह प्रेमोदेन्दु चन्द्रिका' (हरिनाम), 'नवलरस चन्द्रोदय' (सोम), 'सभा-प्रकाश' (हरिचरनदास), 'प्रस्तार-प्रकाश पिंगल' (सुजान सिंह), 'प्रस्तार-प्रभाकर' (रस-पुंज), 'बदन-कलानिधि' (बदनसिंह), 'अलंकार-कला-निधि' (श्री किशन भट्ट), 'अष्ट नाइका' (केशवदास), 'सभा- मंडन' (अमीरदास), 'गरब गंजनी' (संतोखसिंह), 'साहित्य-बोध' (हरिनाम), 'सुन्दर-सिंगार' (कविराज सुन्दर), 'सुधासर-ग्रंथ' (गोपालसिंह नवीन), 'सोभा-सिंगार' (गंगाराम), श्रीकृष्ण साहित्य-सिंधु' (अमीरदास), 'कुसुम-वाटिका' (साहिब सिंह), आदि अनेक रीति-ग्रंथ इस तथ्य को प्रकट करते हैं कि 'रीति-रचना' की परिपाटी का प्रभाव इस प्रदेश के हिन्दी-काव्य पर भी प्रचुर मात्रा में पड़ चुका था।

अलंकृति

वैसे तो अलंकार काव्य में सौन्दर्य-वृद्धि करने वाला एक आवश्यक तत्त्व है और सभी युगों में कवियों ने अलंकारों का प्रयोग अपनी काव्य-कृतियों में किया है, लेकिन जहां तक रीतिकाल का संबंध है, इस युग के काव्य में अलंकारों के

---

१. रीतिकाव्य की भूमिका, पृ० १६८

२. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २१६

प्रयोग पर आवश्यकता से अधिक बल दिया गया है। कविता इस युग के "कवि के लिए एक कला थी, गोष्ठी मंडन थी"—यही कारण है कि अलंकारों का जितना प्राचुर्य इस काव्य में मिलता है, उतना अन्यत्र नहीं।"[1] डा० नगेन्द्र का कथन है कि "रीतिकाव्य एक तरह से अलंकारों का समृद्ध कोष है, इसमें सुरुचि और अरुचि का अनमेल मिश्रण है।"[2]

रीति-ग्रंथों में भी अधिकतर ग्रंथ अलंकार-निरूपण से ही संबंधित हैं, जिनका लक्ष्य केवल अलंकार-निरूपण है, काव्य-रचना नहीं। कई रीति-कवियों ने स्वयं काव्य में अलंकार के महत्व का प्रतिपादन इस प्रकार किया है —

कविता कामिनि सुखद पद सुबरन सरस सुजाति।
अलंकार पहिरे अधिक अद्भुत रूप लखाति।

(शब्द रसायन)

जदपि सुजाति सुलच्छनी सुबरन सरस सुवृत्त।
भूषण बिन न बिराजई, कबिता वनिता मित।

('कविप्रिया—केशव)

मोतिन की सी मनोहर माल गुहै तुक अच्छर जोरि बनावै।
पंडित और प्रवीनन की जोइ चित हरै सो कवित कहावै।

(ठाकुर शतक)

किसी विद्वान ने ठीक ही कहा है कि "इस युग की कविता सर्वकला संपन्न विविध आभूषणों से अलंकृत युवती की तरह है।" इस बात से प्राय: सभी विद्वान सहमत हैं कि "अतिरंजना रीति कवि की कल्पना की विशेषता है और वैचित्र्य उसकी अभिव्यंजना का गुण।"[3] वस्तुत: इस काव्य में शब्द-वैभव से युक्त वर्णन-भंगिमाएँ, उक्ति-वैचित्र्य, कौशल मूलक उपमाएँ, लाक्षणिक प्रयोग, अर्थ-चमत्कार, परिष्कृत वर्ण-बोध, वर्ण-मैत्री आदि का प्राचुर्य है। जैसाकि ठाकुर ने कहा है "मोतियों की माला गूंथना उनका लक्ष्य था।" इसलिए उसमें शब्द-संगठन, भाव-सौन्दर्य तथा शब्द-विन्यास की सुन्दर संगति देखी जा सकती है। लेकिन यह भी सत्य है कि 'शब्द-चयन' का कहीं-कहीं इतना मोह दिखाई पड़ता है कि काव्य में कृत्रिमता आ गई है और वे बाहरी चमक-दमक वाले झूठे मोती से लगते हैं। इस तरह की छिछली शब्द-योजना से काव्य को अत्यधिक क्षति पहुंची है। डा० जगदीश गुप्त ने भी स्वीकार किया है कि "रीतिकाल की कविता भीतर से खोखली और बाहर से बजते हुए शब्दों की ध्वनि से कहीं-कहीं इतनी भरी हुई मिलती है कि बहुधा

---

१. रीतिकाव्य की भूमिका, पृ० १८१
२. वही
३. डा० जगदीश गुप्त : रीति काव्य, पृ० ६३

रसिक काव्य-मर्मज्ञों को उससे वितृष्णा होने लगती है।"[१]

सिद्धांत रूप में यद्यपि इन रीति कवियों ने शब्दालंकारों के अत्यधिक प्रयोग तथा चित्र-काव्य की निंदा की है, परन्तु व्यावहारिक रूप में स्वयं उन्होंने इस तरह की कविता उत्साह के साथ की है। सेनापति के 'कवित्त-रत्नाकार' में प्राप्त 'श्लेष तरंग' तथा रहमान का 'यमन-शतक' चमत्कार-प्रदर्शन की दृष्टि से कविराज के 'राघव पाण्डवीय' तथा भारवि के 'किरातार्जुनीय' की याद ताज़ा कर देते हैं। 'चित्र-काव्य' को यद्यपि इन्होंने 'अधम-काव्य' अथवा 'मृत-काव्य' की संज्ञा दी है, किन्तु केशव की 'कविप्रिया' तथा दास के 'काव्य-निर्णय' में गो मूत्रिका, अश्वगति, कमलबंध, धनुष बंध, माला बंध, पर्वत बंध आदि चित्रालंकारों के उदाहरण महत्व के साथ समाविष्ट मिलेंगे।"[२] इस दृष्टि से काशीराज की 'चित्र-चन्द्रिका' तथा जगतसिंह का 'चित्र मीमांसा' भी उल्लेखनीय है। एकाक्षरी तथा द्व्याक्षरी दोहों के कुछ उदाहरण यहां प्रस्तुत हैं, जो इन कवियों की अति अलंकार-प्रियता को प्रकट करते हैं—

रस रिसि रास रोस आसरो सरन बिसे बीसो।
केकी केका की कका कोक की कका कोक।
लोलि लालि लोलै लली लाला, लीला लोल।
हरि हीरा राहै हरो हेरि रही ही हारि।
रहि रहि हौ हा हा रहौ हरैं हरें हरि हारि।

ऐसी ही पंक्तियों के कारण 'रीति-काव्य' बदनाम भी है, लेकिन इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि अलंकारों के समुचित एवं सुन्दर उदाहरणों की उसमें न्यूनता है।

अलंकारों की प्रधानता एवं कला-प्रियता के ही कारण इस काल को कुछ विद्वानों ने 'अलंकार काल' अथवा 'कला-काल' का नाम भी दिया है।

हरियाणा एवं पंजाब के इस युग के ब्रजभाषा काव्य में भी 'अलंकरण' की इस प्रवृत्ति का प्रभाव अवश्य परिलक्षित होता है, लेकिन उस साहित्य का सर्वांगीण सर्वेक्षण करने पर ज्ञात होता है कि 'परम्परा-निर्वाह के लिए ही कुछ कवियों ने थोड़ी-बहुत चमत्कार-युक्त रचना अवश्य की, किन्तु उनकी अधिकांश काव्य-साधना स्वाभाविक एवं अकृत्रिम शैली में ही हुई है।[३]

हिन्दी-साहित्य के इतिहासकारों तथा अन्य समीक्षकों के सम्मुख जो सामग्री विद्यमान थी, उसके आधार पर उन्होंने इन तीन प्रवृत्तियों को ही प्रमुख माना है। इनके अतिरिक्त वीरता, भक्ति एवं नीति आदि की प्रवृत्तियों का भी गौण

---

१. डा० जगदीश गुप्त : रीति काव्य, प० ८५

२. वही, पृ० ८७

३. देखिए—'गुरु प्रताप सूरज के काव्य-पक्ष का अध्ययन, पृ० २२१-२९२—लेखक

रूप में उल्लेख किया गया है। मैं समझता हूँ कि यहीं से रीतिकाल के पुनर्मूल्यांकन का प्रश्न शुरू होता है। सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यही है कि क्या ये प्रवृत्तियां इतनी ही गौण थीं, जितनी कि इन विद्वानों ने इन्हें माना है, अथवा ये प्रवृत्तियां रीति, शृंगार और अलंकरण की अपेक्षा इतनी कमज़ोर थीं कि इन्हें पीछे धकेल कर उन्हीं के आधार पर इस युग का नामकरण किया जाए तथा इन तथा-कथित गौण प्रवृत्तियों के संबंध में इन विद्वानों ने जो विचार प्रकट किए हैं वे कहां तक समीचीन हैं—युक्ति संगत हैं ?

इससे पूर्व कि इन प्रश्नों की विधिवत समीक्षा की जाए, मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि इस बीच पंजाब और हरियाणा के क्षेत्रों में रचित इस युग की ब्रजभाषा की बहुत बड़ी काव्य-निधि प्रकाश में आई है। विशेषरूप से गुरुमुखी लिपि में रचित सैंकड़ों काव्य-ग्रंथ ऐसे उपलब्ध हुए हैं, जो इसी काल की सीमा में आते हैं, किन्तु वे एक भिन्न लिपि में होने के कारण अंधकार में पड़े रहे; उनकी ओर किसी ने ध्यान तक नहीं दिया। हिन्दी वाले तो यही समझते रहे कि वे पंजाबी के हैं और पंजाबी वालों ने उनकी इसलिए उपेक्षा की कि उनकी भाषा हिन्दी थी। यह अमूल्य निधि अब धीरे-धीरे हमारे समक्ष आ रही है और काफी कुछ आ भी चुकी है। अतः मैं अपने विवेचन में उस साहित्य-सामग्री का उपयोग करके ही आगे बढ़ूंगा।

देश के कुछ अन्य प्रदेशों में रचित साहित्य भी उपेक्षित रहा। राजस्थान में पहले डिंगल में ही साहित्य रचना होती रही थी, लेकिन इस युग में आकर वहाँ भी पिंगल अथवा ब्रज में ही अधिक साहित्य लिखा जाने लगा था। उसकी उपेक्षा भी कैसे की जा सकती है। फिर राजस्थानी अथवा डिंगल को भी जब हम हिन्दी का एक अंग मानते हैं, तो यह कैसे उचित हो सकता है कि अपनी रुचि के अनुसार डिंगल के एक-दो ग्रंथ तो हम अपने इतिहासों में रख छोड़ें और शेष को कोई स्थान न दें। न्यायसंगत यही है कि उन्हें भी अपने इतिहास में सम्मिलित करें। यही बात मिथिला के कवियों के संबंध में है, तथा ब्रज के उन कवियों के संबंध में भी जिन्होंने गुजरात, महाराष्ट्र अथवा किसी अन्य प्रदेश में रहकर काव्य-साधना की ! अस्तु !

२

रीतिकाल की अन्य प्रमुख प्रवृत्तियाँ: (१) वीरभावना

अब तक हमने 'रीति काव्य' की जो प्रवृत्तियाँ विद्वानों ने प्रमुख मानी है उनका ही उल्लेख किया है। लेकिन रीतिकाल के सम्पूर्ण साहित्य को दृष्टि में रखने पर प्रतीत होता है कि उसमें कुछ अन्य प्रमुख प्रवृत्तियाँ भी उपलब्ध हैं। पहले हम 'वीर-काव्य' रचना की प्रवृत्ति को ही लेते हैं। यद्यपि आचार्य शुक्ल ने अपने इतिहास में 'हम्मीर-हठ' (चन्द्रशेखर), 'छत्र-प्रकाश' (लाल), 'हम्मीर रासो' (जोधराज), 'सुजान-चरित' (सूदन), 'शिवा बावनी', 'शिवराज-भूषण', 'छत्रसाल प्रकाश' (भूषण) 'महाभारत' (गोकुल नाथ), 'जंगनामा' (श्रीधर) तथा 'हिम्मत बहादुर विरुदावली' (पद्माकर) आदि वीर काव्यों का उल्लेख किया है और उनकी प्रशंसा भी की है, तथापि वीरता को उन्होंने इस युग की एक गौण-प्रवृत्ति के रूप में ही स्वीकार किया है। इस सम्बन्ध में उनके विचार उल्लेखनीय हैं—"इनके अतिरिक्त आश्रयदाताओं की प्रशंसा में वीररस की फुटकल कविताएँ भी बराबर होती रहीं; जिनमें युद्ध-वीरता और दानवीरता दोनों की बड़ी अत्युक्तिपूर्ण प्रशंसा भरी रहती थी। ऐसी कविताएँ थोड़ी-बहुत तो रस ग्रन्थों आदि में मिलती हैं, कुछ अलंकार-ग्रंथों के उदाहरण रूप और कुछ अलग पुस्तकाकार···। ऐसी पुस्तकों में सर्वप्रिय और प्रसिद्ध वे ही हो सकी हैं जो या तो देव काव्य के रूप में हुई हैं अथवा जिनके नायक कोई देश प्रसिद्ध वीर जनता के श्रद्धा-भाजन रहे हैं। जैसे शिवाजी, छत्रसाल, महाराणा प्रताप आदि। जो पुस्तकें यों ही खुशामद के लिए आश्रित कवियों की रूढ़ि के अनुसार लिखी गईं, जिनके नायकों के लिए जनता के हृदय में कोई स्थान न था, वे प्राकृतिक नियमानुसार प्रसिद्धि न प्राप्त कर सकीं। बहुत-सी तो लुप्त हो गईं। उनकी रचना में सच पूछिए तो कवियों ने अपनी प्रतिभा का अपव्यय ही किया।[1]

डा० भगीरथ मिश्र से इस श्रेणी की रचनाओं को अपेक्षाकृत अधिक सहानुभूति प्राप्त हुई; किन्तु वे भी वीररसात्मक प्रवृत्ति को गौण ही मानते हैं। इसी

---

१. हिन्दी-साहित्य का इतिहास, पृ० २९९

तरह अन्य विद्वानों ने भी या तो इस तरह की रचनाओं की उपेक्षा की, या उनकी वीर भावना को श्रृंगार-संवलित मानकर इन्हें श्रृंगारिक प्रवृत्ति को बल प्रदान करने वाली रचनाएँ घोषित किया। विशेषरूप से यह स्वीकार करते हुए कि ये सभी राजाश्रय में रचित होने के कारण आश्रयदाताओं की विरुदावलियाँ मात्र हैं, अतः 'रीति-काव्य' का ही एक अंग हैं।

डा० टीकमसिंह तोमर ने 'हिन्दी-वीरकाव्य (१७००-१९००) नाम से प्रस्तुत अपने शोध-प्रबन्ध में प्रथम बार इस युग की वीर-रसात्मक रचनाओं का अध्ययन किया है और भारतीय हिन्दी परिषद् द्वारा प्रकाशित 'हिन्दी-साहित्य द्वितीय खंड में संकलित अपने एक निबन्ध में हिन्दी के ९९ वीर काव्यों की सूची दी है,[1] जिनमें से ९० वीर काव्य रीतिकाल की सीमा में आ सकते हैं—यदि केशव से इस काल का आरम्भ माना जाए। ९० ग्रन्थों की वह सूची उसी रूप मेंप्रस्तुत की जा रही है—

केशव	रत्नवावनी, वीरसिंहदेव चरित, जहांगीर जसचन्द्रिका
ऋषभदास जैन	कुमारपाल रासो
गंग कवि	फुटकर कविता
महाराजा मानसिंह	मान चरित
जटमल	गोरा बादल की कथा
बनवारी	स्फुट छन्द
निधान	जसवन्त विलास
दलपति मिश्र	जसवन्त उद्योत
गम्भीर राय	एक ग्रंथ (मऊ के जगत सिंह और शाह-जहाँ के युद्ध का वर्णन)
डूंगरसी	शत्रुसाल रासो
रामकवि	जयसिंह चरित्र
रत्नाकर	स्फुट कविता
मतिराम	ललित ललाम
कुलपति मिश्र	रस-रहस्य, संग्राम सार
सुखदेव मिश्र	फ़ाजिल अली प्रकाश
भूषण	शिवराज भूषण, शिवा बावनी, छत्रसाल दशक, फुटकर छन्द
श्रीपति भट्ट	हिम्मत प्रकाश
कुंभकरण	रतन रासो
घनश्याम शुक्ल	स्फुट कविता

१. हिन्दी-साहित्य—२, पृ० १८०-१८४

रणछोड़	राज पट्टन
निवाज तिवारी	छत्रसाल विरुदावली
महाराणा जयसिंह	जयदेव विलास
सतीप्रसाद	जयचंद-वंशावली
मान	राज विलास
दयालदास	राणारासौ
हरिनाम	केसरीसिंह समर
उत्तमचंद	दिलीप-रंजिनी
वृन्द कवि	वचनिका, सत्यस्वरूप
लालकवि (गोरेलाल)	छत्र प्रकाश
श्रीधर (मुरलीधर)	जंगनामा
मूकजी	खीची जाति की वंशावली
केवलराम	वाणी-विलास
गंजन	कमरुद्दीन खां हुलास
हरिकेश	स्फुट-पद, जगत दिग्विजय, ब्रजलीला
रसपुंज	कवित्त श्री माताजीरा
सुजानसिंह भट्ट (काव्यकलानिधि) —	सांभर युद्ध, जाजव युद्ध, बहादुर-विजय, जयसिंह गुण सरिता
सदानंद	रासा भगवंतसिंह
शाहजू पंडित	बुन्देल वंशावली, लक्ष्मणसिंह प्रकाश
कुंवर कुशल	लखपति यश सिन्धु
हम्मीर	लखपत-पिंगल
अनन्त फन्दी	स्फुट रचना
महताब	नख शिख
नन्दराम	शिकार-भाव, जग-विलास
देवकर्ण	वाराणसी-विलास
शंभुनाथ मिश्र	अलंकार-दीपक, रस कल्लोल, रस तरंगिनि
तीर्थराज	समर-सार
सोमनाथ	सुजान-विलास
सूदन	सुजान-चरित्र
प्रतापसाहि	जयसिंह प्रकाश
बिहारीलाल	हरदौल-चरित्र
दत्तू (देवदत्त)	ब्रजराज-पंचाशा
गुलाब कवि	करहिया कौ रायसौ

मंडन भट्ट	राठौड चरित्र, रावल-चरित्र, जयसाह-सुजस-प्रकाश
लाल कवि (बनारसी)	कवित्त
लाल झा मैथिल	कनरपीघाट की लड़ाई
गणपति भारती	वीर हज़ारा
उत्तमचंद भंडारी	रतन-हमीर की बात
श्री कृष्ण भट्ट	आली जा प्रकाश
मान कवि	नरेन्द्र भूषण
शिवराम भट्ट	प्रताप-पचीसी, विक्रम-विलास,
पद्माकर	हिम्मत बहादुर विरुदावली, जगद-विनोद, आलीजाह प्रकाश (आलीजाह-सागर) प्रतापसिंह-विरुदावली
चंडीदान	वंशाभरण, विरुद-प्रकाश
मान (खुमान)	समर-सार
शिवनाथ	रासा भैया बहादुरसिंह
दुर्गाप्रसाद	अजीतसिंह फत्ते (नायक रासो)
जोधराज	हम्मीर रासो

इन वीर काव्यों के संबंध में यहाँ डा० टीकमसिंह तोमर के शब्दों को उद्धृत करना ही उचित होगा। उनका कथन है "इस धारा के ग्रंथों के नायक प्रायः युद्धवीर, दानवीर, दयावीर एवं धर्मवीर के रूप में चित्रित किए गए हैं।"[1]... ऐसे पात्रों के चित्रण में सच्ची वीरता, अदम्य उत्साह, असीम अध्यवसाय और कार्य-कुशलता के दर्शन होते हैं।[2]...इन वीरों में सच्ची राजपूती वीरता एवं कर्मण्यता के गुण वर्तमान थे।[3] वीररस की निरूपण की दृष्टि से भी कुछ ऐसी रचनाएँ हैं जिनके चरित-नायकों के वीरत्व एवं शौर्य का वास्तविक अंकन हुआ है।' वीर रस के प्रसंग में अस्त्र-शस्त्रादि युद्ध-सामग्री, वीरों की सजावट, सैन्य-प्रमाण, वीरों की गर्वोक्तियां, पौरुष पूर्ण कार्य-कलाप,' तुमुल कोलाहल आदि के सजीव चित्र अंकित किए गए हैं, जिनसे वीर रस का वास्तविक चित्र पाठक के हृदय-पटल पर अंकित हो जाता है।"[4]

१. हिन्दी साहित्य, भाग-२, पृ० १४७
२. वही, पृ० १४८
३. वही
४. वही, पृ० १५०
५. वही

इन ६० वीर काव्यों के अतिरिक्त 'विजयपाल रासो', 'खुमान रासो' जैसे कुछ ऐसे वीर काव्य भी हैं, जिनका उल्लेख शुक्ल जी ने वीरगाथाकाल के अन्तर्गत किया है, किन्तु वे वस्तुतः इसी काल की रचनाएँ हैं। 'पृथ्वीराज रासो' के सम्बन्ध में भी यह मान्यता है कि अपने वर्तमान रूप में उसका बहुत-सा अंश इसी काल में रचा गया है। इसके अतिरिक्त 'संगतसिंह रासो' (गिरधर चारण), 'रायसा' (शिवनाथ), 'हम्मीर रासो' (महेश), वचनिका राठौर रतनसिंह री महेस दासौत की 'खिडियै जगैरी कही' (खडिया जग्गा), 'अजीतसिंह चरित' (हरिदास भाट), 'जयसिंह चरित' (राम कवि), 'राजप्रकाश' (किशोरदास), 'शक्ति-भक्ति प्रकाश' (माधोदास), 'राजरूपक' (वीरभाण), 'सूरज प्रकाश' (करणीदास), 'दीपंग कुल प्रकाश' (कमजी दधिवाडिया), वंश भास्कर एवं वीर सतसई (सूर्यमल), 'अतवार चरित्र' (नरहरिदास), 'झूलना महाराज जयसिंह जी रा' (सांदूमाला), 'बेलि क्रिसन रुकमणी री' (पृथ्वीराज राठौड), 'राम रासो' (माधोदास दधिवाडिया), 'नागदमन' (सायां जी झूला), 'हालां झलां री कुंडलियां' (संकलन), 'राउ रतन री वेल' (कल्याणदास), 'रायसिंघ री बेल' (सांदूमाला) 'सूरसिंह री बेल' (गाडण चोला), 'अनोपसिंह री बेल' (गाडणा वीरभाण), 'वीर जिन चरित्र बेलि' (ज्ञान उद्योत) आदि ऐसे अनेक अन्य वीर काव्य हैं, जिनका उल्लेख तोमर जी वाली सूची में नहीं है। 'महादेव पारवती री बेलि' (आढा किसना), 'रघुनाथ चरित नवरस बेलि' (महेसदास), 'बाबा गुमान भारती री बेल' (चिमनजी कविया) आदि में वीर रस सहायक रूप में आया है।

यही नहीं 'कूंगरै बलोच री बात', जगदे पवांर री बात', 'मीढा खां री बात', 'सोनिगर मालदे री बात', 'राव चुंडै री बात', 'गौड गोपालदास री बात', 'गोरा बादल री बात', 'बात खडगल पुंवार री', 'छाहड पांवर री बात', 'राजा पद्मसिंह री बात', 'पृथ्वीराज चौहान री बात' आदि गद्य रचनाओं में भी वीर रस की प्रधानता है। इनमें युद्धों एवं युद्ध में जूझते योद्धाओं का सजीव चित्रण हुआ है।

इस प्रकार इन वीर काव्यों की संख्या १०० से भी ऊपर पहुँच जाती है। अर्थात् यदि 'रीति काव्यों से अधिक नहीं है, तो उनके लगभग बराबर अवश्य है। इनके अतिरिक्त कुछ रीति काव्यों में भी वीररस का निरूपण हुआ है। उपर्युक्त सभी रचनाएँ प्रायः राजाश्रय में ही लिखी गई हैं और कुछेक पौराणिक काव्यों को छोड़कर शेष ऐतिहासिक घटनाओं और पात्रों पर आधारित हैं। इनमें प्रायः आश्रयदाता राजाओं के वंशों की गौरवगाथा, उनकी अपनी वीरता, शौर्य एवं दानशीलता आदि का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन हुआ है।

इनमें कई तरह की रचनाएँ हैं। अधिकांश तो चरित काव्य ही हैं; जिनमें से कुछ रासो काव्यों के रूप में लिखे गए हैं। दूसरे, बिलास, प्रकाश, भूषण, उद्योत,

सिंधु, सरिता आदि नामों से भी लिखे गए हैं।' चरित-काव्यों के अतिरिक्त कुछ शुद्ध युद्ध-काव्य हैं (समर, जंगनामा, संग्राम आदि नामों सहित), कुछ विजय-काव्य या दिग्विजय काव्य एवं कुछ प्रशस्ति-काव्य (विरुदावलियां) हैं। राजस्थान में 'बात', 'बेलि', 'बचनिका' के रूप में भी काफी वीर काव्य लिखे गए। स्फुट पदों या गीतों के रूप में भी पर्याप्त वीर काव्य रचा गया।

राजस्थानी वीर-काव्य

उपर्युक्त वीर काव्यों में से अधिकांश राजस्थान में लिखे गए हैं। राजस्थान की धरती वीर-प्रसवा रही है। कर्नल टाड के शब्दों में 'राजस्थान का कोई छोटा-सा भी राज्य ऐसा नहीं होगा, जिसका अपना (Thermopylal) थरमोफिलाल नहीं होगा और एक भी नगर ऐसा नहीं होगा जिसने (Leonidas) लियोनीदास उत्पन्न न किया हो तथा राजस्थान में शायद ही कोई ऐसा वीर होगा जिस पर वीर-गीत न लिखा गया हो।'

राजस्थान का अपनी गौरवमयी परम्पराओं, शौर्य और पराक्रम के कारण विलक्षण व्यक्तित्व है और वहां के रण-बांकुरों की रक्त-रंजित गौरव-गाथाएँ भारतीय इतिहास के पृष्ठों पर स्वर्ण अक्षरों में लिखी गई हैं।

राजस्थान का साहित्य वीररस प्रधान है और उसके वीरकाव्यों की विद्वानों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की है। श्री मोतीलाल मेनारिया का मत है कि "डिंगल साहित्य प्रधानतया वीर-रसात्मक है। इसमें राजपूत जाति के इतिहास, उसकी संस्कृति एवं उसकी भाव-भावनाओं की बड़ी सुन्दर व्यंजना हुई है।"[1] डा० गोवर्द्धन शर्मा के अनुसार "राजस्थानी काव्य का अर्थ है वीरकाव्य। उसमें शौर्य, त्याग, ओज, बलिदान, स्वाभिमान, स्वामि-भक्ति, दीनोद्धार आदि-आदि गुणों का भंडार है।"[2] सुनीति कुमार चैटर्जी लिखते हैं कि "राजस्थानी साहित्य वीरत्व से ओतप्रोत जीवन और वीर की झंझा प्रवाह सदृश्य मृत्यु का संदेश है। ये राजस्थान के गीत थे, जिनमें अथक शक्ति एवं अविजित **लौहयुक्त साहस** का फेनिल **स्रोत** प्रवाहित होता था और जिन्होंने कि राजपूत योद्धा को व्यक्तिगत सुख तथा आकर्षण को विस्मृत कर सत्यं, शिवं, सुन्दरम् के लिए लड़ने को बाध्य किया।"[3]

डा० जगदीश श्रीवास्तव का कथन है कि "राजनैतिक परिस्थितियों में अंकुरित, पोषित एवं संवर्धित होने के कारण डिंगल कविता का कलेवर प्रधानतया

---

१. **राजस्थान का पिंगल साहित्य, पृ० ८**

२. **प्राकृत और अपभ्रंश का डिंगल साहित्य पर प्रभाव, पृ० २८३**

३. **प्राकृत और अपभ्रंश का डिंगल पर प्रभाव, पृ० १४८ से उद्धृत**

वीररसात्मक है। यदि यह कहा जाए कि डिंगल भाषा का वीर साहित्य विश्व-साहित्य के लिए एक अपूर्व उपहार है, तो अत्युक्ति न होगी। वीर रस के अन्तर्गत मान्य युद्ध, दान, दया और धर्म—चारों प्रकार के वीरों के सजीव, स्वाभाविक तथा सांगोपांग चित्र काव्यकारों ने अंकित किए हैं। इस दिशा में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त होने के कारण वीरोचित कृत्यों का प्रत्यक्ष दर्शन एवं स्वानुभूति है।'[1]

राजस्थानी साहित्य के अध्येता एक अन्य विद्वान श्री मनोहर प्रभाकर के अनुसार "राजस्थान के कवि तूलिका और तलवार के धनी थे। वे वीर भूमि में पैदा हुए, वीरता के वातावरण में पले थे और स्वयं योद्धा थे। इन रचनाओं में वीरत्व व्यंजना, पुरुषार्थ के बल पर लड़ने वाले वीर सैनानी सिंहनाद करते पाए जाते हैं।"[2] इनमें "किसी राष्ट्रनायक का व्यक्तित्व, किसी सुप्रसिद्ध घटना का ओजस्वी चित्र, किसी वीर की उत्तेजनात्मक युद्ध की प्रशंसा, किसी स्वामीभक्त का युद्ध-भूमि में प्राणदान, किसी आश्रयदाताकी दानवीरता, शूरवीरता आदि का चित्रण हुआ है।" युद्ध का, रणभूमि का, वीरोल्लास का जैसा सजीव, ओजपूर्ण और मार्मिक चित्रण डिंगल-साहित्य में मिलता है, वैसा भारत की अन्य किसी प्रांतीय भाषा में नहीं मिलता।[3]

यहां मैंने राजस्थानी साहित्य के अध्येताओं एवं समीक्षकों के मतों को ही उद्धृत किया है, विशेष रूप से इसलिए कि मेरी धारणाओं को एक पक्षीय अथवा अत्युक्तिपूर्ण या अतिरंजना से पूर्ण न समझा जाए। अंत में, राजस्थानी साहित्य के संबंध में गुरुदेव कवीन्द्र रवीन्द्र के भावपूर्ण वक्तव्य का उल्लेख करना अनुचित न होगा—'भक्ति-रस का काव्य तो भारतवर्ष के प्रत्येक साहित्य में किसी न किसी कोटि का पाया जाता है। राधा-कृष्ण को लेकर हरएक प्रान्त ने मंद या उच्च कोटि का साहित्य पैदा किया है। लेकिन, राजस्थान ने अपने रक्त से जो साहित्य निर्माण किया है, उसके जोड़ का साहित्य और कहीं नहीं पाया जाता। और उसका कारण है—राजस्थानी कवियों ने कठिन सत्य के बीच में रहकर युद्ध के नगारों के बीच अपनी कविताएँ बनाई थीं। प्रकृति का तांडव रूप उनके सामने था।—इस साहित्य में जो भाव है, जो उद्वेग है, वह राजस्थान का खास अपना है। वह राजस्थान के लिए ही नहीं सारे भारतवर्ष के लिए गौरव की वस्तु है।'[4] अन्यत्र वे लिखते हैं—'वीरता का भाव जो कि राजस्थान के प्रत्येक दोहे तथा गीत का सार है, स्वयमेव ऐसा अनूठा एवं अलौकिक है कि उसके लिए सम्पूर्ण

---

१. प्राकृत और अपभ्रंश का डिंगल पर प्रभाव, पृ० १४८ से उद्धृत
२. राजस्थानी साहित्य और संस्कृति
३. राजस्थान का पिंगल साहित्य, पृ० १, मोतीलाल मेनारिया
४. वही, पृ० ८-९ से उद्धृत

राष्ट्र को गर्व हो सकता है। युद्ध तथा युद्धस्थल का भयावह वातावरण, रण के विरोधी प्रतिद्वन्द्वियों के शौर्य-पराक्रम, औदार्य और आतंक, सेनानियों की बहुलता तथा अश्व-गजों की प्रचुरता के वर्णन यद्यपि अत्युक्तियों एवं अतिशयोक्तियों से अनुरंजित और अनुप्राणित हैं, तथापि प्रभावशाली, मनोमुग्धकर एवं अनुपम हैं।'[1]

उपर्युक्त सभी वक्तव्य सम्पूर्ण राजस्थानी साहित्य के संबंध में हैं। इसमें रीतिकाल की सीमाओं में आने वाला काव्य भी है और उससे पूर्व का भी। 'रीतिकाल' की सीमाओं में लिखा गया 'वीरकाव्य' किसी भांति दीन-हीन या क्षीण है, इसकी चर्चा इन विद्वानों ने नहीं की।

इन मन्तव्यों के प्रकाश में 'रीतिकाल' के अध्येता, समीक्षकों-इतिहासकारों के इस काल की 'वीररसात्मक प्रवृत्ति' के संबंध में व्यक्त विचार कितने अपूर्ण, अक्षम एवं अशक्त हैं, इस पर अधिक कुछ कहने की आवश्यकता नहीं।

इन वीर-काव्यों के अन्त में कहीं-कहीं धार्मिक-भावना का उन्मेष भी मिलता है, तथापि ये वीरगाथाएँ प्रायः इस आदर्श पर रचित हैं :—

'जाहि की बिटिया सुन्दर देखि, ताहि पै जाय धरे हथियार'

यही कारण है कि श्रृंगार का वर्णन इनमें प्रचुरता के साथ हुआ है। यहां तक कि सेना आदि के रूपक भी विष-कन्याओं और कामिनियों के रूप में प्रस्तुत किए गए हैं। अधिकांश युद्धों का कारण सुन्दर राजकुमारियों का हरण है और यदि कहीं यह ऐतिहासिक कारण नहीं भी था, तो युद्ध-वर्णन के लिए ऐसे कारणों की कल्पना कर ली गई है। 'लेकिन यहां श्रृंगार नायक को वीर-भावनाओं से विरत नहीं करता, वरन् प्रेरित ही करता है। वीर क्षत्राणियां नर के लिए प्रेरणा हैं।"[2]

इन कवियों ने वीरांगनाओं के त्याग, उत्साह, साहस आदि का भी विशद् वर्णन किया है। वे पति की घमासान युद्ध से रक्त-रंजित कलाइयों पर मुग्ध होने वाली वीरांगनाएँ हैं। पति की वीर गति पर आंसू नहीं बहातीं, वरन् अधरों पर मुस्कान लिए गर्व के साथ जौहर करती हैं। यह वीर नारी उसी वीर पर रीझती है जो भालों की नोक पर सोता है और शत्रुओं को ललकारता है। रण-भूमि से भाग कर आए पति की भर्त्सना करती हैं, कायर पतियों को फटकारती हैं। पत्नी स्वयं पास सोये पति को आक्रमण की सूचना देकर जगाती है और युद्ध में भेजती है।

यहां माताएँ भी पुत्र के युद्ध-भूमि में प्राण त्यागने पर गर्व अनुभव करती हैं। शायद ही विश्व की किसी अन्य भाषा के, किसी भी युग के साहित्य में नारियों के इस प्रकार के वीरत्व की अभिव्यक्ति हुई होगी।

---

१. राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० ५७ से उद्धृत

२. राजस्थानी साहित्य की कुछ प्रवृत्तियां, डॉ० नरेन्द्र भागवत, पृ० ८६-८७

इस साहित्य की श्रृंगार संवलित वीर प्रवृत्ति का उल्लेख डा० नरेन्द्र भागवत् ने इस प्रकार किया है—'श्रृंगार की कालिंदी और वीरता की सुरसरी के संगम पर इन कवियों ने ऐसे काव्य-तीर्थ का निर्माण किया है, जिसमें अवगाहन करने पर हृदय पवित्र बनता है, मस्तिष्क जागृत होता है और संपूर्ण शरीर में एक साथ स्फूर्ति का संचार हो जाता है।'[1] डा० ओमप्रकाश का कथन है—'यद्यपि ये वीर काव्य प्रायः किसी राजा या सामन्त के चरित पर ही आधारित हैं, पर राजा विशेष से संबंध रखते हुए भी वे युग-प्रतिनिधि हैं। जनता के जीवन से उनका निकट का संबंध है।'[2]

प्रबंध रचनाओं में परंपरा रूप में वस्तु-वर्णन, नगर वर्णन, प्रकृति वर्णन, स्त्री-पुरुष वर्णन, संयोग-वियोग श्रृंगार वर्णन, युद्ध-वर्णन, मृगया, उत्सव, योद्धाओं के नामों की परिगणना एवं विवाहों आदि का विशद वर्णन विस्तार के साथ उपलब्ध होता है। इन वर्णनों से सामन्तीय वीर युग की सभ्यता और दरबारी-जीवन का यथार्थ परिचय मिलता है।

अत्युक्ति एवं ध्वन्यार्थ व्यंजना इनकी एक उल्लेखनीय विशेषता है। ऐसे शब्दों के असंख्य उदाहरण मिलेंगे जिन्हें सुनकर ही क्रिया का चित्र नेत्रों के सामने आ जाता है।

गुरुमुखी लिपि में रचित वीरकाव्य

इसी युग में इन वीर काव्यों के अतिरिक्त पंजाब और हरियाणा में भी गुरुमुखी-लिपि के माध्यम से बहुत बड़ी संख्या में वीर काव्यों की रचना हुई। वस्तुतः, पंजाब में वीरकाव्य की एक दीर्घ परम्परा रही है यहां की युद्धमान परिस्थितियां इसे विकसित करती रही हैं और ये वीर गाथाएँ वीरों के वीरत्व को उत्तेजित करती रही हैं। गुरु गोबिन्दसिंह के समय में तत्कालीन परिस्थितियों के परिणामस्वरूप इस प्रकार की रचनाओं को विशेष प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। गुरु तेगबहादुर की निर्मम हत्या से जो आक्रोश यहां की जनता में उत्पन्न हुआ था, औरंगज़ेब के अन्याय और अत्याचारों से उसने खुले विद्रोह का रूप धारण कर लिया था। गुरु गोबिंदसिंह ने अपने अनुयायियों में अद्भुत साहस और वीरता का संचार किया। उन्होंने 'खालसा' की रचना की जो शक्ति और भक्ति का प्रतीक बनकर दृढ़ता से खड़ा हुआ। आध्यात्मिक एवं सात्विक जीवन, शौर्य तथा साहस उसके आदर्श थे। यही आदर्श यहां के वीर काव्यों में आद्योपान्त परिलक्षित होता है।

---

१. राजस्थानी साहित्य की कुछ प्रवृत्तियाँ, पृ० ६१

२. ओम्प्रकाश : हिन्दी काव्य और उसका सौन्दर्य, पृ० १८

अन्य प्रदेशों की तुलना में पंजाब-हरियाणा में वीर काव्यों की रचना केवल राजाश्रय में ही नहीं हुई, वरन् धर्माश्रय में भी प्रचुर वीरकाव्य लिखा गया। यहाँ के राजाश्रयों का वातावरण भी अन्य प्रदेशों के सामन्तीय वातावरण से भिन्न था। यहां शृंगारिकता के स्थान पर 'धार्मिकता' सिक्ख सरदारों एवं राजाओं का आदर्श था। यही कारण है कि यहां के वीरकाव्यों का स्वरूप एवं लक्ष्य दूसरे प्रदेशों में रचित वीरकाव्यों से भिन्न है, उदात्त है। धर्माश्रय में वीर-काव्यों का प्रणयन एक विशिष्ट घटना है, जो शायद ही अन्यत्र मिल सके। दूसरी विशिष्टता यह है कि यहां ऐतिहासिक काव्य भी लिखे गए लेकिन उनके साथ ही अनेक पौराणिक वीरकाव्य भी लिखे गए। इन पौराणिक वीरकाव्यों का आदर्श सामन्तीय ऐतिहासिक वीरकाव्यों से भिन्न एवं महनीय होना स्वाभाविक ही है। यहां के ऐतिहासिक काव्य का परिवेश एवं संदर्भ भी अलग ढंग का है।

गुरु गोबिंदसिंह के समय में रचित वीरगाथाएँ यहां 'वारों' के रूप में प्रचलित थीं। लोकगीतों के रूप में भी शालिवाहन जैसे वीरों की गाथाएँ अत्यंत लोकप्रिय थीं। सिक्खों के दसवें गुरु गोबिंदसिंह जी परम संत, मननशील चिंतक, साहित्य-मर्मज्ञ, राष्ट्रनायक तथा साहसी शूरवीर थे। वे स्वयं एक श्रेष्ठ कवि थे और अनेक कवियों के आश्रयदाता थे। उन्होंने धर्म-रक्षार्थ जहां एक ओर आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक स्तर पर कार्य किया, वहां दूसरी ओर अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध सैनिक अभियान का भी संचालन किया। इतना ही नहीं अपने अनुयायियों में उत्साह एवं साहस का संचार करने के लिए उन्होंने पौराणिक आख्यानोंके आधार पर वीर-काव्यों की रचना की और अन्य आश्रयी कवियों से भी करवाई। यही कारण है कि आनन्दपुर तथा पाउंटे में एक विशिष्ट प्रकार के वीरकाव्यों का ही प्रणयन हुआ।

गुरुमुखी लिपि में रचित उल्लेखनीय वीरकाव्य निम्नलिखित हैं :—

(क) दशमग्रंथ में संकलित रचनाएँ—

(१) वचित्र नाटक (अपनी कथा)

(२) चौबीस अवतारों में रामावतार

(३) 'कृष्णावतार'

(४) 'रुद्रावतार'

(५) 'कल्कि अवतार'

अन्य—

(६) 'चण्डी चरित उक्ति विलास'

(७) 'चण्डी चरित' द्वितीय

(८) 'शस्त्रनाममाला'

(ख) गुरु-दरबार (आनंदपुर-पाउंटा) की रचनाएँ :—

(९) सेनापति कृत 'गुरु-शोभा'

(१०) अणीराय कृत जंगनामा गुरु गोबिंदसिंह
(११) हीर कृत 'गोविंद बावनी'
(१२) स्फुट काव्य

गुरु गोबिंदसिंह के दरबार में ५२ कवियों का विद्यमान होना प्रसिद्ध है। उन सभी ने गुरु जी की धर्म-वीरता, युद्ध-वीरता, दान-वीरता, शौर्य एवं साहस आदि की प्रशंसा में वीरकाव्य लिखा। उनके आश्रय में रहने वाले अन्य प्रमुख कवि हैं—हंसराम, मंगल, अमृतराई, सैणा, चंदन, धन्ना, सुन्दर, टहकण, कुवरेश, आशासिंह आदि।

(ग) स्वतंत्र रूप से रचित काव्य :—
(१३) 'गुरु-विलास'—सुक्खासिंह (गुरु गोबिंदसिंह के जीवन पर आधारित काव्य)
(१४) 'गुरु विलास'—कुइर सिंह

(घ) राजाश्रय में रचित काव्य :—
(१५) 'वार अमरसिंह—केशोदास
(१६) 'हम्मीर हठ'—चन्द्रशेखर वाजपेयी
(१७) 'हम्मीर हठ'—ग्वाल
(१८) 'विजय विनोद'—ग्वाल
(१९) 'फतहनामा श्री गुरु खालसा का'—गणेश

(ङ) ऐसे प्रबन्ध काव्य जिनमें वीर रस की प्रधानता है :—
(२०) 'गुरु प्रताप सूरज'—संतोखसिंह
(२१) 'गुरु विलास पातसाही ६—सोहन
(२२) 'गुरु गोविंद सिंह विलास—ब्रह्म अद्वैतानंद

(च) ऐसे प्रबंध काव्य जिनमें वीररस सहायक रूप में आया है :—
(२३) 'महिमा प्रकाश—सरूपदास भल्ला'
(२४) 'गुरु नानक विजय'—संतरेण
(२५) 'गुरु नानक प्रकाश'—संतोखसिंह

इनके अतिरिक्त और भी अनेक काव्यों के पाए जाने की संभावना है। पटियाला, नाभा, कपूरथला, जींद आदि राजदरबारों में भी स्फुट रूप से प्रचुर वीरकाव्य लिखा गया। कवि निहाल ने 'ज्योतिष-प्रकाश' में राजा कर्मसिंह की दानशीलता की; मूलसिंह लही ने पटियाला राज्य की सेना और उसके अस्त्र-शस्त्रों की, हजूर सिंह ने नाभा नरेश की वीरता तथा साहबसिंह मृगेन्द्र ने लाडुआ नरेश अजीतसिंह की वीरता की प्रशंसा ओजपूर्ण शैली में की है।

गुरु गोबिंदसिंह के आश्रित कवियों तथा पटियाला दरबार के कवियों ने महाभारत के विविध पर्वों के अनुवाद भी हिन्दी में प्रस्तुत किये।

महाभारत के अनुवादों तथा गुरु-दरबार की कुछ पौराणिक रचनाओं को छोड़ कर शेष का विषय ऐतिहासिक ही है और उनमें प्रायः गुरु गोबिंदसिंह, गुरु हरगोबिंद तथा बंदा बहादुर आदि की वीरता और उत्साह का चित्रण हुआ है। इन सभी में गुरु जी को धर्म-योद्धा—संत योद्धा के रूप में चित्रित किया गया है।

'दशमग्रंथ' में संकलित सभी वीर काव्यों तथा गुरु जी के जीवन पर आधारित अन्य वीरकाव्यों का आदर्श है :—

'हम इह काज जगत मो आए। धरम हेत गुरदेव पठाए।
जहां-तहां तुम धरम बिथारो। दुसट दोखियनि पकरि पछारो।

(वचित्र नाटक, ७।२९)

पूर्वोक्त वीरकाव्यों के आदर्श 'जाहि की बिटिया सुन्दर देखि ताहि पै जाय धरे हथियार' से तुलना करने पर इनके आदर्श की विलक्षणता सहज ही देखी जा सकती है।

राजपूती आदर्श एवं कथानकों पर आधारित 'हम्मीर हठ', 'विजय विनोद' आदि कुछ रचनाओं को छोड़ कर उपरोक्त प्रायः सभी वीर काव्यों में युद्ध एवं शौर्य-प्रदर्शन का मूल कारण अथवा उद्देश्य दुष्ट-विनाश अथवा असुर-संहार करके धर्म की स्थापना करना है। राजाश्रय में रचित अधिकांश वीर काव्यों का आदर्श भी यही है।[1]

संस्कृत साहित्य की वीर रसात्मक रचनाओं में युद्धों के प्रायः तीन मूल कारण मिलते हैं—असुर-संहार, भूमि-दिग्विजय एवं स्त्री-हरण। पौराणिक रचनाओं में असुर-संहार का उद्देश्य परिलक्षित होता है तथा ऐतिहासिक काव्यों में अन्य दो उद्देश्य ही प्रमुख हैं।

हिन्दी के रीतिकालीन राजपूती वीरकाव्यों का उद्देश्य या तो स्त्री-हरण है या पारिवारिक अथवा वंश-गत वैमनस्य, या सामंतीय अहंमन्यता एवं प्रतिशोध-भावना या कुछ राजपूती आदर्श—जैसे, शरणागत की रक्षा करना आदि।

बृहत्तर राष्ट्रीय चेतना अथवा सत्य एवं धर्म की प्रतिष्ठा का महनीय उद्देश्य उनमें प्रायः परिलक्षित नहीं होता। उनमें साहस और शौर्य का तो प्रदर्शन खूब हुआ है, युद्धों का चित्रण भी अत्यंत ओजपूर्ण है। किन्तु अपवादों को छोड़कर, वीरता का आदर्श प्रायः वैयक्तिक स्वार्थ-भावना तक सीमित होने के कारण, उनमें उदात्तता का प्रायः अभाव है।

इसके विपरीत गुरुमुखी लिपि में रचित हिन्दी वीरकाव्यों का आदर्श 'वाल्मीकि रामायण' के राम जैसा 'सत्य पराक्रमः' प्रदर्शित करना है अथवा 'महाभारत' का आदर्श प्रस्तुत करना है, जहां योद्धा अन्याय और अत्याचार के

१. दृष्टव्य—गुरुमुखी लिपि में हिन्दी-साहित्य, पृ० ३३०-३४६ (लेखक)

विरुद्ध उसे अनैतिक मानकर, सत्य और न्याय की रक्षार्थ लड़ते हैं, राज-भोग के लिए नहीं। उनका अंतिम लक्ष्य मोक्ष है, त्याग है—भोग नहीं। गुरुमुखी लिपि में रचित इन वीरकाव्यों के महनीय आदर्श को इन पंक्तियों में व्यक्त किया जा सकता है :—

"धन्य जीउ तिह को जग माहि मुख ते हरि नाम चित्त में जुद्ध विचारे।"

इसीलिए यहां खडग संतों की रक्षक एवं दुष्टों की संहारक होने के कारण 'अकाल पुरुष' के समान वंदनीय है[1] तथा 'अकालपुरुष' का सर्वलोह, असिपाणि, खड्गपाणि, अस्त्रपाणं, शस्त्रपाणं, असिकेतु आदि के रूप में स्मरण किया गया है तथा शस्त्रों को ब्रह्ममय माना गया है।[2]

राजस्थानी वीर काव्यों को शृंगार-संवलित कह कर उनकी उपेक्षा की गई है, लेकिन उपर्युक्त वीर काव्य इस आक्षेप से भी सर्वथा मुक्त हैं। ये सभी काव्य प्रायः धर्म-भावना से ओतप्रोत हैं एवं शृंगारिकता से मुक्त हैं।

पंजाब तथा हरियाणा में रचित इन काव्यों में वीर-भावना की प्रवृत्ति इतनी प्रबल है कि 'रामावतार', 'कृष्णावतार' तथा 'चंडी चरित' आदि पौराणिक आख्यानों को भी वीर काव्य का रूप दे दिया गया है। 'रामावतार' (दशमग्रंथ) में भी घटनाओं का संयोजन-निरूपण इस ढंग से हुआ है कि इसे एक शुद्ध 'वीरकाव्य' कहा जा सकता है। 'चंडी-चरित्र' तो शुद्ध 'युद्ध-काव्य' है। 'मार्कण्डेय पुराण' के आधार पर यहां केवल चंडी द्वारा असुरों के संहार की कथा का वर्णन ही विस्तार से हुआ है। शेष भाग की उपेक्षा की गई है। 'दशमग्रंथ' का 'कृष्णावतार' इस दृष्टि से एक विशिष्ट रचना है। हिन्दी साहित्य में कृष्ण की लोकरंजनकारी रास-रसपूर्ण मनोहर लीलाओं का वर्णन ही भक्त कवियों ने किया है। लेकिन 'कृष्णावतार' के कवि ने कृष्ण के 'युद्धवीर' रूप को अधिक रुचि से चित्रित किया है। इस प्रबंध के २४९२ छंदों में से लगभग १४०० छंद कृष्ण के जरासंध, शिशुपाल तथा अन्य योद्धाओं के साथ युद्धों से संबंधित हैं। इस रचना में उनके युद्धों का अत्यंत ओजपूर्ण चित्रण हुआ है, जिनमें कृष्ण एक निर्भीक, साहसी, धीर, पराक्रमी एवं यशस्वी 'शूरवीर' के रूप में प्रकट होते हैं।

---

१. खग खंड विहंड खल दल खंड अति रणमंडं वरवंडं।
भुजदंड अखंड तेज प्रचंड जोति अमंड भान प्रभं।
सुख संता करणं दुर्मति दरणं किलविख हरणं अस सरणं।
जै जै जग कारण स्त्रिसट उबारन मम प्रतिपारन जै तेगं।
(वचित्र नाटक १/२)

२. तुमी गुरज तुम ही गदा तुम ही तीर तुफंग।
दास जान मोरी सदा रच्छ करो सरबंग। (शस्त्रनाममाला १३)

उनके उत्साह, साहस और शौर्य का एक उदाहरण देखिए। जरासंध ११ अक्षौहिणी सेना लेकर मथुरा को चारों ओर से घेर लेता है, तो उसके सैन्य-बल से भयभीत होकर सभी यादव भाग जाना चाहते हैं। उसी समय रण-बांकुरे कृष्ण की यह ओजस्वी ललकार सुनाई पड़ती है—

'यों हरिजू पुन बोलि उठियो गज को बधि कै जिमि केहरि गाज्यो।
राजन चित करौ मन में हमहूं दोऊ भ्रात सु जाई लरेंगे।
बान कमान क्रिपान गदा गहिकै रन भीतर जुद्ध करेंगे।
हम ऊपर कोप कै आई है ताहि सै असत्र सिउ प्रान हरेंगे।

कृष्ण का कहना है कि चाहे सारा समाज उनका साथ छोड़कर चला जाए, वे भाई बलराम को साथ लेकर अकेले समस्त शत्रु-दल का संहार करने का साहस रखते हैं।

इस प्रकार की ओजस्वी वीरोक्तियों तथा योद्धाओं के साहसपूर्ण पराक्रम एवं शौर्य-प्रदर्शन से 'कृष्णावतार' भरा पड़ा है। यहां कृष्ण तो एक कर्म-वीर, कर्त्तव्य-परायण, शूरवीर राष्ट्र-नायक के रूप में सामने आते ही हैं, अक्रूर एवं उद्धव जैसे कृष्ण-साहित्य के चिर परिचित सन्देश-वाहक पात्र भी अद्भुत वीर एवं योद्धा बन कर आए हैं। 'कृष्णावतार' के योद्धाओं के साहस का परिचय निम्न पंक्तियों में मिल सकता है :—

'कहा भयो मम ओर ते सूर हने संग्राम।
लरबो मरबो जीतबो इह सुभटनि को काम।'

इस दृष्टि से 'कृष्णावतार' सारे हिन्दी साहित्य में एक अद्वितीय महत्व का वीर काव्य है।

'दशमग्रंथ' की 'अपनी कथा' भी एक विशिष्ट प्रकार की वीर रसात्मक रचना है। यह एक यशस्वी शूरवीर (दशमगुरु गोबिंदसिंह) द्वारा अपने स्वयं के युद्धों का वीर-रसात्मक ऐतिहासिक दस्तावेज़ है। हिन्दी साहित्य में अपने ढंग की अकेली और अनोखी रचना है।

वस्तुतः, 'दशम ग्रन्थ' की सभी वीर रसात्मक रचनाओं में युद्ध के कारणों से लेकर उनकी समाप्ति तक के समस्त इतिवृत्त के साथ-साथ योद्धाओं की रण-सज्जा, सेना-प्रस्थान, वीरों के प्रहार-प्रतिप्रहार, उनके शौर्य-प्रदर्शन, पराक्रम, साहस, वीरोक्तियों, अमर्षपूर्ण अनुभावों, वीरों के रणोल्लास, उनके दृढ़ व्यक्तित्व, युद्धों की भीषणता, विविध आयुधों के प्रयोग, रण-वाद्यों के रव, युद्ध-विधि, युद्ध नीति, दुर्ग-रचना, युद्ध भूमि की विकरालता एवं वहां के यथार्थ दृश्यों आदि का अत्यंत विस्तृत, विशद, सजीव एवं ओजस्वी चित्रण हुआ है। 'दशमग्रंथ' का युद्ध चित्रण 'रासो' की टक्कर का है।

इन वीर काव्यों में आध्यात्मिक-सांस्कृतिक चेतना, राष्ट्रीयता एवं लोक-

मंगलकारी भावना का उन्मेश भी हुआ है। इस दृष्टि से इन रचनाओं का हिन्दी के सम्पूर्ण वीरकाव्य में एक विशिष्ट एवं महत्त्वपूर्ण स्थान है। ऐसी विशिष्ट उदात्त चेतना राजस्थानी वीरकाव्यों में भी दुर्लभ है ?[१]

'गुरु शोभा'[२], 'जंगनामा गुरु गोबिंदसिंह'[३], 'गुरु गोविंद बावनी'[४], 'गुरु विलास'[५], तथा 'गुरु प्रताप सूरज'[६] आदि रचनाओं में भी गुरु गोबिंदसिंह के युद्धों का अत्यन्त ओजपूर्ण चित्रण हुआ है और इनमें भी वीर रस के अत्यन्त उदात्त रूप को देखा जा सकता है। इन रचनाओं में कविता-धारा वीरता और धार्मिकता के दो सुन्दर कूलों के बीच से कलकल करती वेग के साथ प्रवाहित हुई है। हिन्दी में शायद ही अन्यत्र किसी कवि की वाग्धारा इस तरह के भव्य कूलों के मध्य से प्रवाहित हुई होगी।

गुरुमुखी लिपि में रचित वीर काव्यों में 'दशमग्रंथ' के पश्चात् 'गुरु प्रताप सूरज' का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह सिक्ख गुरुओं के जीवन पर आधारित ५१८२९ छंदों का एक महान प्रबन्ध-काव्य है। इसमें वीर-रस को प्रमुख स्थान मिला है। गुरु हरगोबिंद, गुरु गोबिंदसिंह, बंदा-बहादुर के तथा कुछ अन्य युद्धों को मिला कर इसमें कुल २३ युद्धों का वर्णन हुआ है और इस ग्रन्थ के कोई दस हज़ार छंद वीर रस से सम्बन्धित हैं। इन युद्ध-वर्णनों में युद्ध-कथा की पूर्णता, सजीवता, एवं ओजस्विता है। वीरों के उत्साह, साहस, दृढ़ता, धैर्य, शौर्य, रणोल्लास, गर्वोक्तियों आदि के अतिरिक्त सेना की तैयारी, सेना-प्रस्थान, विविध रण-वाद्यों की भीषण ध्वनि, योद्धाओं की साज-सज्जा, धौंसों की धुंकार, खड्गों की खनकार, भालों की चमक-दमक, बन्दूकों की दनादन, तोपों की तड़ातड़, अश्वों की हुंकार, हाथियों की चिंघाड़, वीरों के ओजपूर्ण अनुभावों, पौरुष-पूर्ण कृत्यों, युद्ध-कुशलता, विजय पर हर्ष-ध्वनि, भागती हुई सेना की दुर्दशा, रात्रि के युद्ध, घेराव, दुर्ग-संरचना, मंत्रणा, आक्रमण, कायरों की मनः स्थिति, युद्ध नीति, रक्त-रंजित एवं योद्धाओं के क्षत-विक्षत अंगों, टूटे-फूटे अस्त्र शस्त्रों से भरी युद्ध-भूमि आदि का जितना विशद, सजीव, यथार्थ एवं ओजस्वी चित्रण इस महाकाव्य में किया गया है, वैसा 'पृथ्वीराज रासो' को छोड़कर अन्यत्र दुर्लभ है और वीर रस का जैसा

---

१. विस्तृत विवेचन के लिए दृष्टव्य "गुरु गोबिंदसिंह का वीर काव्य" (लेखक)
२. विस्तृत विवेचन के लिए दृष्टव्य—गुरुमुखी लिपि में हिन्दी साहित्य, पृ० १४८-१७१
३. दृष्टव्य – जंगनामा गुरु गोबिंदसिंह (लेखक)
४. दृष्टव्य –गुरुमुखी लिपि में हिन्दी साहित्य, पृ० १८५
५. दृष्टव्य—'गुरु विलास-भूमिका (लेखक)
६. दृष्टव्य—गुरु प्रताप सूरज के काव्य पक्ष का अध्ययन (लेखक)

उदात्त रूप, सामाजिक जीवन तथा युग-चेतना का जैसा यथार्थ वर्णन एवं सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक चेतना का जैसा महनीय चित्रण इस काव्य में हुआ है, वह 'रासो' में भी दुर्लभ है। निस्सन्देह 'गुरु प्रताप सूरज' एक ऐसी महान काव्य-कृति है, जिस पर किसी भी भाषा को गर्व हो सकता है। यह हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ काव्यों में से एक है।

इस श्रेणी में तीसरी महत्त्वपूर्ण रचना है 'गुरु विलास'। यह सुक्खासिंह का लगभग ५४०० छंदों का प्रबंधकाव्य है। इसे भी हम वीरकाव्यों की कोटि में ही रखना उचित समझते हैं, क्योंकि इसका भी मुख्य स्वर 'वीर रसात्मक' है।[1] इसमें भी युद्धों का विशद एवं सजीव चित्रण हुआ है और इसकी वीर-भावना भी अत्यंत उदात्त है। 'गुरु विलास' (कुइरसिंह) का कथानक, प्रतिपाद्य एवं आदर्श भी 'गुरु विलास' (सुक्खासिंह) के ही अनुरूप है। 'जंगनामा गुरु गोबिंदसिंह' शुद्ध रूप में 'युद्ध काव्य' है जिसमें गुरु गोबिंदसिंह को एक 'धर्म-योद्धा के रूप में प्रस्तुत किया गया है और युद्ध का कारण है—औरंगज़ेब की अनीति एवं अत्याचार। 'गुरु शोभा' प्रबन्धात्मक रचना है, जिसमें गुरु गोबिंदसिंह के युद्धों का चित्रण हुआ है और उनके आध्यात्मिक विचारों का निरूपण भी हुआ है। 'गुरु गोबिन्द बावनी' 'शिवा बावनी' की समकालीन एवं उसी पद्धति की रचना है जिसमें गुरु गोबिन्दसिंह के शौर्य, साहस एवं वीरता आदि की प्रशंसा कवित्त-सवैयों आदि में की गई है। ये तीनों ही रचनाएँ गुरु-भक्त कवियों द्वारा लिखी गई हैं, इसलिए राजाओं के आश्रित कवियों की रचनाओं में जैसी चाटुकारिता परिलक्षित होती है, उसके स्थान पर इनमें धार्मिक-भावना का गहरा रंग है और इसलिए इनकी वीर-भावना का आदर्श भी राजपूती वीरकाव्यों से भिन्न स्तर का है। गुरु-दरबार की स्फुट रचनाओं में भी यही स्वर मुखरित हुआ है। दरबारी वीर-काव्यों में दो तरह की रचनाएँ उपलब्ध हैं। 'वार अमरसिंह' (केशोदास) एवं 'फतहनामा श्री गुरु खालसा का (गणेश) जैसी रचनाएँ 'आनंदपुरीय' आदर्श पर रचित वीर काव्य हैं; जबकि—'हम्मीर-हठ' (चन्द्रशेखर वाजपेयी), 'हम्मीर-हठ' (ग्वाल), 'विजय-विनोद' (ग्वाल) आदि राजपूती-वीरकाव्य के आदर्श पर ही लिखी गई हैं।

गुरुमुखी में प्राप्त इन सभी वीरकाव्यों एवं स्फुट कविताओं का विस्तृत परिचय देने का यहां अवसर नहीं है अन्यत्र मैंने इन रचनाओं का विवेचन किया है। यहां इतना ही कहना है कि वीर-रस की इतनी उत्कृष्ट काव्य-कृतियों के सम्मुख होते हुए, रीतिकाल की 'वीररसात्मक प्रवृत्ति' को गौण कैसे कहा जा

---

१ गुरु-विलास—प्रबंध-काव्य बनाम वीर-काव्य दृष्टव्य गुरुमुखी लिपि में हिन्दी साहित्य, पृ० २००-२१ (लेखक)

सकता है, विशेष रूप से जबकि इन में वीर रस का अत्यंत विशद, ओजस्वी और उदात्त रूप में चित्रण हुआ है और उनकी रचना भी शृंगाराश्रित या 'रीति-काव्य' की पद्धति पर न होकर स्वतंत्र रूप में तथा सत्य, न्याय, धर्म आदि की स्थापना के महनीय एवं उच्च उद्देश्य को लेकर की गई है। 'परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम' उनका आदर्श है।

'विद्वानों' की यह आदत-सी बन गई है कि किसी भी नई सामग्री के संबंध में यदि कोई नये तथ्यों की स्थापना करता है, अथवा किसी प्राचीन सामग्री, किसी अज्ञात प्राचीन कवि के काव्यत्व की प्रशंसा करता है, तो उनका परंपरावादी-मन और मस्तिष्क उसे मानने को जल्दी तैयार नहीं होता। वे व्यंग्यपूर्ण हँसी हँस कर उसके विरुद्ध अपना फतवा दे देते हैं और 'रचना' को बिना पढ़े ही उसकी 'श्रेष्ठता' में संदेह प्रकट कर देते हैं। मेरा ऐसे विद्वानों से विनम्र निवेदन है कि वे उपर्युक्त रचनाओं को पढ़कर ही अपनी धारणाएं बनाएं। 'दशमग्रंथ' तथा 'गुरु प्रताप सूरज' के संबंध में मुझे विशेष रूप से यह बात कहनी बहुत जरूरी महसूस हो रही है। मेरा निश्चित मत है; (और वह इसलिए है कि मैंने इन महान् ग्रंथों का अध्ययन किया है) कि हिन्दी में 'रामचरितमानस', 'पृथ्वीराज रासो' आदि दो-तीन प्रबंध रचनाओं को छोड़ कर कोई भी रचना उनका मुकाबला नहीं कर सकती। 'रासो' में भी वह युग-चेतना, सांस्कृतिक-बोध एवं उदात्तता नहीं है, जो इसकी प्राण-शक्ति है। इनमें वीर रस के साथ भक्ति तथा शान्त रस का विलक्षण समन्वय हुआ है।

वीर-भावना इन कवियों में इतनी प्रबल है कि होली जैसे आमोद-प्रमोद एवं उल्लास के पर्व के चित्रण में भी उनकी वीर-भावना की अभिव्यंजना हुई है। इन धर्म-योद्धाओं के लिए युद्ध फाग के उल्लास-उत्सव के समान है। बाण कुंकुम समान हैं, ढाल डफ के समान है, बंदूकें पिचकारी तुल्य हैं। वे गुलाल के भाले, तुफंगों की पिचकारियां लेकर शूरवीरों के साथ फाग खेलते हैं और उनमें से जो श्रोणित निकलता है, वह केसर समान है। होली के अवसर पर चैती के रूप में युद्ध-गीत गाए जाते हैं, ढोल, डफ़, मंजीर के स्थान पर धौंसों की धुंकार सुनाई पड़ती है; खेलने वाले गुटकों की बजाए आयुध धारण किए हैं; भौंड़े स्वांगों के स्थान पर 'रिपु को खंडित करने' अथवा जंग जीतने के करतब करते हैं।[1]

दूसरे, गुरु नानक देव जैसे शांत स्वभाव के साधक के चरित्र-वर्णन से सम्बन्धित चरित्र-काव्यों में भी वे किसी न किसी रूप में वीर-भावना की अभिव्यक्ति का मार्ग खोज लेते हैं। 'नानक-प्रकाश' तथा 'गुरु नानक-विजय' में भी वीर रसात्मक कई प्रसंग आए हैं।

---

१. दृष्टव्य—'गुरुमुखी लिपि में हिन्दी साहित्य, पृ० ३७३-३७८ (लेखक)

अस्तु, जिस युग में कुल मिलाकर डेढ़-सौ के करीब विविध प्रकार के वीर-काव्य तथा बड़ी मात्रा में स्फुट वीर रसात्मक काव्य लिखा गया हो; वीरता के इतने विविध रूपों; युद्धों का इतना विशद एवं ओजस्वी चित्रण हुआ हो, वीर रस का इतना उदात्त रूप मिलता हो, उस युग में इस प्रवृति को गौण कैसे माना जा सकता है।

शुक्ल जी ने ग्रन्थों की संख्या; महत्त्वपूर्ण रचनाओं और उनकी प्रमुख प्रवृत्तियों को ही काल-निर्णय का आधार स्वीकार किया है। इस काल में वीर-काव्यों की संख्या 'रीतिकाव्यों' अथवा 'श्रृंगार रस के काव्यों' से बहुत कम नहीं है। 'दशम ग्रंथ' एवं 'गुरु प्रताप सूरज' जैसे दो महान ग्रंथ इस काल की उपलब्धियां हैं, जिनके समकक्ष दूसरा ग्रन्थ इस काल में नहीं मिलेगा। 'दशम ग्रंथ' के १८००० छंदों में से लगभग एक तिहाई (अर्थात् कोई ६००० छंद) वीर-रसात्मक हैं। वीर रस के कोई दस हजार छंद 'गुरु प्रताप सूरज' में हैं, वीर रस के दो-दो हज़ार छंद दोनों 'गुरु विलासों' में भी होंगे। बीस हज़ार छंद तो यही हो गए—अब और छंद अनुमान से जोड़ लीजिए। 'पृथ्वीराज रासो' के जो छंद इस युग में लिखे जाकर उसमें जोड़ दिए गए हैं, उन्हें भी साथ रख लें और तब उन्हें श्रृंगार रस के छंदों के सामने रख कर तोल लें—मात्रा, परिमाण और काव्यत्व की दृष्टि से किस में भारीपन है। हमें बिहारी, पद्माकर, देव, घनानंद, मतिराम जैसे चार-पांच श्रृंगारी कवियों के सरस, रसिकतापूर्ण कुछेक छंदों से रस-सिक्त होकर उनके साथ नहीं बह जाना चाहिए और न ही बिहारी की तरह उसमें 'बूड़ने को तिरना' मान लेना चाहिए बल्कि भूषण, गुरु गोबिंदसिंह, सेनापति, अणीराय, हीर, हंसराम, मंगल, सुक्खासिंह, भाई सन्तोखसिंह आदि वीर रस के अनेक उत्कृष्ट कवियों की कर्म-सौन्दर्य से युक्त मंगलमयी ओजस्वी वाणी से भी उत्साहित एवं उल्लसित होना चाहिए। इन कवियों के काव्य-सौन्दर्य को स्थापित करने के लिए मेरे लिए उनकी कविताओं के अधिक उदाहरण प्रस्तुत करना यहां संभव नहीं है, लेकिन इन रचनाओं से अपरिचित पाठकों के लिए कुछ छंद 'परिशिष्ट' भाग में प्रस्तुत हैं।

३.

(२) भक्ति भावना

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रीतिकाल में एक 'छठा वर्ग' कुछ ऐसे भक्त कवियों का माना है, जिन्होंने भक्ति और प्रेमपूर्ण विनय के पद आदि पुराने भक्तों के ढंग पर गाए हैं।[1] और इस प्रकार भक्ति को इस युग की एक गौण प्रवृत्ति स्वीकार किया है। रीतिकाल की रीति स्वच्छन्द काव्य-धारा की समीक्षा करते हुए डा० कृष्णचन्द्र वर्मा ने लिखा है कि 'प्रेम के अतिरिक्त रीति-मुक्त कवियों में भक्ति, वैराग्य, ईश्वरीय लीलाओं का वर्णन, नीति आदि से सम्बन्धित रचनाएँ भी मिलती हैं। ये रचनाएँ परिमाण और महत्त्व दोनों ही दृष्टियों से स्वच्छन्द कवियों की प्रेम सम्बन्धी रचनाओं के समक्ष नहीं ठहर सकतीं, फिर भी लगभग सभी कवियों ने भक्ति-नीति आदि के छंद समान रूप से लिखे हैं।'[2]

डा० जगदीश गुप्त ने भी 'रीति कवि के व्यक्तित्व में अन्य गुणों के साथ भक्त का भी समन्वय स्वीकार किया है।' उनका कथन है कि "देव बिहारी मति-राम, पद्माकर और दास आदि कवियों में भक्त का भी समावेश है।"[3] अधिकतर विद्वानों ने इन रीति कवियों की भक्ति-साधना को 'राधिका कन्हाई सुमिरन के बहाने' के रूप में ही स्वीकार किया है, क्योंकि वे समझते हैं कि 'आगे के कवि रीझि हैं तो सुकविताई-नतरु राधा माधव सुमिरन को बहानो है' कहकर इन्होंने इसमें भ्रांति के लिए गुंजाइश ही नहीं छोड़ी है। डा० नगेन्द्र ने उनकी भक्ति-भावना को अतिशृंगारिकता के आरोप से बचने का एक कवच कहा है। उनका मत है कि 'वास्तव में भक्ति भी उनकी शृंगारिकता का एक अंग थी।...रीति कवियों के विलास-जर्जर मन में इतना नैतिक बल ही नहीं था कि भक्ति-रस में आस्था प्रकट करते।'[4]

---

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २९९
२. रीति स्वच्छंद धारा, पृ० २७२-२७३
३. रीति काव्य, पृ० २८
४. रीति-काव्य की भूमिका, पृ० १८०

डा० भगीरथ मिश्र का कथन है कि 'बिहारी जैसे रीति कवि की भक्ति-भावना भी शृंगार-संवलित रूप में ही दृष्टिगोचर होती है।'[१] डा० बच्चनसिंह भी लिखते हैं कि "इनकी रचनाओं में भक्त कवियों की सी ताज़गी और उल्लास के स्थान पर एक प्रकार की क्लांति और अवसाद है, भगवान के प्रति रागात्मक उन्मेष की जगह हत् तेज मन की दीनता और आत्म-भर्त्सना है।"[२] विद्वानों का एक वर्ग तो इन रीति कवियों की भक्ति-भावना को इसी रूप में देखता है। दूसरी ओर डा० राकेश ने अनेक तर्क देकर रीति-कवियों को भक्त सिद्ध करने का भी प्रयत्न किया है। उनका कथन है कि "नायिका भेद के कवि भक्त नहीं थे, यह कैसे जाना गया। निश्चय ही वे विरक्त संन्यासी न होते हुए भी, भक्ति-भावना से शून्य नहीं थे।"[३] डा० जगदीश गुप्त भी इतना स्वीकार करते हैं कि 'भक्ति-काव्य की लीलापरक भाव-स्थितियों का भी रस-सिक्त अंकन अनेक रीति-कवियों ने किया।—देव और घनानंद के कतिपय छंद बहुत दूर तक भावना के उसी स्तर तक (सूर, तुलसी और मीरा के पदों के) पहुँचे हुए दिखाई देते हैं।'[४] यहां हम इस विवाद में नहीं पड़ना चाहते कि ये कवि कितने शृंगारी थे और कितने भक्त। इनकी भक्ति-भावना किसी की प्रतिक्रिया थी या मनोवैज्ञानिक आवश्यकता; जीवन के आरंभ में थी या उत्तरांग में, आत्म-संतोष कारक थी या आत्म-प्रेरक, उल्लास की सूचक है या दीनता की, भीतरी अधिक है या बाहरी; उसमें कितना आत्म-संयम और आत्मबल है; उसमें कितनी गंभीरता, प्रगाढ़ता या स्वच्छता है; उसमें मध्यवर्गीय धर्म-भीरुता थी या वह सामन्तीय विलासिता से ग्रसित थी, अथवा उसमें आत्म-समर्पण कितना था; उन्होंने वह राज्याश्रय-हीन होने पर लिखी थी अथवा अपमानित होकर; क्षुब्ध होकर लिखी या अवसाद में।

इन प्रश्नों पर काफी कुछ कहा जा चुका है। मेरे लिए यहां इतना ही कहना काफी है कि रीतिकवियों में भक्ति-भावना भी किसी सीमा और स्तर तक थी। इसमें कोई मतभेद नहीं है कि बिहारी, देव, पद्माकर मतिराम, केशव आदि प्रमुख रीति-कवियों एवं घनानंद, बोधा, ठाकुर, आलम, रसखान आदि स्वच्छंदता-वादी कवियों की रचनाओं में भक्ति संबंधी अनेक उदाहरण मिलते हैं।

यहां क्रम से इस युग के भक्ति-भावना से युक्त कवियों का विवरण प्रस्तुत करना अप्रासंगिक न होगा—

---

१. हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास, पृ० १६१
२. रीतिकालीन कवियों की प्रेम व्यंजना, पृ० ४३७
३. पोद्दार अभिनंदन ग्रंथ, पृ० ४११
४. रीतिकाव्य, पृ० ५६-५७

प्रमुख 'रीति' और गौणतः भक्ति-भावना से युक्त कवि—केशव, चिंतामणि, बिहारी, मतिराम, कुलपति, देव, सुरतिमिश्र, श्रीपति, सोमनाथ, भिखारीदास, कालिदास त्रिवेदी, कवीन्द्र, बेनी, पद्माकर आदि।

स्वच्छंदतावादी कवि

वृन्द, बोधा, आलम, घनआनन्द, ठाकुर, रसखान आदि।

इन रीति कवियों की भक्ति-भावना पर सबसे बड़ा आक्षेप यही है कि वह श्रृंगार संवलित है। लेकिन, श्रृंगारिकता के इस आक्षेप से तो किसी सीमा तक जयदेव, विद्यापति, नंददास, हितहरिवंश तथा उनकी तरह के अनेक भक्त कवि भी नहीं बच सके हैं। यह मान लेने पर भी कि 'रीतिकालीन (रीति) कवियों की भक्ति में भावावेश, शुद्धता, ओजस्विता और प्रखरता भक्त कवियों जितनी नहीं है; इस युग में, सैकंडों की संख्या में कृष्ण-भक्त, राम भक्त, सूफी, संत एवं जैन-कवि ऐसे भी हुए हैं, जो कि 'रीति कवि' नहीं हैं और अपना अलग अस्तित्व रखते हैं। इन कवियों की रचनाओं की एक लम्बी सूची दी जा सकती है। ऐसे अनेक कवि गुजरात, महाराष्ट्र, राजस्थान में भी मिले हैं और गुरुमुखी लिपि में भी प्रचुर मात्रा में ब्रज-भाषा का ऐसा साहित्य उपलब्ध हुआ है।

वस्तुतः, रीतिकाल में भक्ति-भावना सम्पन्न कवियों की तीन कोटियां हैं। एक तो वे 'रीति-कवि' जो श्रृंगारी अधिक हैं, भक्त कम। दूसरे वे भक्त-कवि जो भक्त अधिक हैं, साथ में कुछ श्रृंगारिकता भी उनमें हैं। तीसरे ऐसे कवि हैं, जो केवल भक्त अथवा संत ही है और ऊंचे दर्जे के भक्त या संत कवि हैं।

इस युग के भक्त-कवियों का संक्षिप्त-सा विवरण यहां प्रस्तुत है :—

(क) राम-भक्त कवि

राम-भक्ति काव्य एवं 'तुलसीदास' के नाम बहुत दिनों तक हिन्दी में पर्याय-वाची बने रहे। पर पिछले कुछ वर्षों में राम-भक्ति का परवर्ती प्रभूत साहित्य सामने आया है।

इस युग के प्रमुख राम-काव्य इस प्रकार है :—

सेनापति—	कवित्त रत्नाकर का 'रामायण-वर्णन' 'रामरसायण वर्णन'
महाराज पृथ्वीराज—	दशरावउत्त
प्राणचंद चौहान—	रामायण महानाटक
माधवदास चारण—	गुणराम रासौ, अध्यात्म रामायण
लालदास—	अवध विलास
नरहरिदास चारण—	अवतार चरित

रायचन्द—	सीताचरित
अग्रदास—	ध्यान-मंजरी
कृपानिवासजी—	लगन-पचीसी, अनन्य चिंतामणि, रास-पद्धति भावना, पचीसी-पदावली
बाल कृष्ण नायक बाल अली—	८ ग्रंथ; ध्यान मंजरी, नेह-प्रकाश, सिद्धान्त तत्वदीपिका प्रमुख
रामप्रियाशरण प्रेमकली—	सीतायन
यमुनादास—	गीत गोविन्द
जानकी रसिक शरण रसमाला—	अवधी सागर
महाराज विश्वनाथसिंह—	आनन्द रघुनंदन नाटक, संगीत रामायण आदि
स्वामी जनकराज किशोरी शरण	'सिद्धांत मुक्तावली'
श्री रसिक अली	अन्दोल रहस्य दीपिका
रामचरण दास करुणा सिंधुजी—	पंचशतक, विवेक शतक, रसमालिका, अष्टयाम पूजा विधि
जीवाराम जुगल प्रियाजी—	युगलप्रिया पदावली
युगलानन्य शरण 'हेमलता'—	उज्ज्वल उत्कंठा विलास, अर्थ पंचक, जानकी सनेह हुलास शतक, संत सुख प्रकाशिका पदावली, सीतारामनाम परत्व पदावली, प्रेम परत्व प्रभा दोहावली
बनादास—	उभय प्रबोधक रामायण
रसरंग मणिजी —	सीताराम झूला विलास, राम नाम यश विलास, सरयू रसरंग लहरी, अवध-पंचक
सीताराम शरण रामरस रंगमणि—	सीताराम शोभावली, प्रेम पदावली श्री रामरस रंगविलास, रामशत वंदना, राम झांकी विलास,
ज्ञान अलि सहचरिजी—	सियवर केलि पदावली
रामसखे—	जानकी नौ रत्न माणिक्य, पदावली, नृत्य राघव मिलन
रामप्रिया शरण प्रेमकली—	श्री सीतायन
श्री प्रेमलताजी—	वृहद उपासना रहस्य
रघुराजसिंह जी—	रघुराज विलास
बालानंद—	पदरचना

रूपलाल रूप सखी—	होरी
प्रेम सखी	सीताराम नखसिख, भक्त मनरंजनी
राम प्रपन्न मधुराचार्य (मधुर प्रिया)—	पद रचना भगवद् गुण दर्पण, माधुर्य केलि, कादंबिनी, वाल्मीकि रामायण-टीका, रामतत्व प्रकाश
सिया सखी—	पद रचना
महाराज छत्रसाल—	६ ग्रंथ, रामावतार के कवि, रामध्वजाष्टक, हनुमान पच्चीसी, आदि राम-भक्ति संबंधी
महात्मा सूर किशोर—	मिथिला-विलास
हर्याचार्य 'हरि सहचरी'—	अष्टयाम एवं पद
राम प्रसाद बिन्दुकाचार्य—	गीता तात्पर्य निर्णय, शिक्षा-पत्री
राम नारायण दास—	भजन रत्नावली
हरिहर प्रसाद—	श्रृंगार प्रदीप
कविराज लछिमन—	सियाराम चरण चन्द्रिका
श्री नवल सिंह 'श्री शरण'	
युगल अलि—	श्री रामचन्द्र विलास
युगल मंजरी जी—	भावनामृत कादम्बिनी
सिया अली—	समय रस-वर्धिनी नित्य रासलीला
श्याम सखे—	पदावली
श्री महाराजदास जी—	सीताराम श्रृंगार रस
सीताराम शरण शुभ शीली जी	युगलोत्, कंठ प्रकाशिका
वैष्णवदास—	वैष्णव-विनोद
रसदेव कवि—	वृहद् पद-विनोद
रूप सरस जी—	विनय चालीसी
रामलोटन मिश्र—	भक्त प्रमोदिनी
श्री मोदलता जी—	फूल बंगला
श्री बैजनाथ कुरमी—	सीताराम संयोग पदावली
मथुरा प्रसादसिंह—	श्री राम विलास
कोविद—	रम्य पदावली
सीताराम शरण रामरस रंगमणि जी—	भावना अष्टयाम

गुरुमुखी लिपि में उपलब्ध राम-काव्य

हृदय राम—	हनुमान नाटक
'दशम ग्रन्थ' में संकलित—	रामावतार
कपूरचन्द	रामायण
बसावासिंह	रामचरित रामायण
निहाल—	रामायण रामचन्द्रोदय
ज्ञानी संतसिंह—	रामाश्वमेध भाषा
साधु गुलाबसिंह—	अध्यात्म रामायण
कीरत सिंह—	अनूप रामायण
सोढ़ी मिहरबान—	आदि रामायण
हरीसिंह—	आत्म रामायण
रामदास—	सार रामायण
वीरसिंह—	सुधासिंधु रामायण
साधु श्रीनिवास—	सुखदायक रामायण
नरहरिदास—	पौरखेय रामायण
गुपालसिंह—	विनै पत्रिका
मोहनसिंह बेदी—	महारामायण
रतन हरि—	रघुबर पद रत्नावली
	रघुबर लीला, विनय वारही
बग्गा सिंह—	राम कथा
मोहर सिंह—	रामगीत
गुलाब सिंह—	रामगीता
गुलाब सिंह—	अध्यात्म रामायण
कृष्ण लाल—	राम चरित
रत्न हरि—	राम रहस्य
चंद—	रामायण
साहिब दास—	लवकुश कथा
संतोख सिंह—	बाल्मीकि रामायण भाषा

कृष्ण-काव्य

इस युग के कृष्ण-भक्त कवियों एवं उनकी रचनाओं की तो लम्बी सूची प्रस्तुत की जा सकती है। भक्तिकाल में वल्लभ-सम्प्रदाय, राधावल्लभ-सम्प्रदाय, चैतन्य-सम्प्रदाय तथा सखी सम्प्रदायों के अन्तर्गत कृष्ण-भक्ति का साहित्य लिखा जा रहा था। उन सम्प्रदायों में इस काल में भी बराबर साहित्य-रचना होती रही।

वल्लभ-सम्प्रदाय में बिट्ठल जी के सात पुत्रों ने गोकुल, कामबन, कांकरौली, श्रीनाथ द्वारा, सूरत, बम्बई और काशी में गद्दियां स्थापित की थीं, जिनमें इस युग में प्रचुर साहित्य लिखा गया। माधव, निम्बार्क, चैतन्य और राधा-वल्लभ सम्प्रदायों की भी अनेक गद्दियां स्थापित हो गई थीं। निःसंदेह उनमें वैभव और विलास अधिक था, पर उन केन्द्रों में साहित्य रचना भी खूब हुई है। इन सम्प्रदायों में इस काल में जो कवि हुए उनमें से कुछ इस प्रकार हैं :—

राधावल्लभ सम्प्रदाय :—

स्वामी चतुर्भुजदास, ध्रुवदास, चाचा हित वृन्दावन दास, हठी जी, नेही नागरीदास, लाल स्वामी, कृष्णचंद्र गोस्वामी, दामोदर दास, सहचरि सुख, कल्याण पुजारी, रसिक-दास, हित अनूप, अनन्य अली, कृष्ण दास भावुक, हित रूपलाल, चन्द्रलाल गोस्वामी, प्रेमदास, लाड़ली दास, आनंदीबाई, प्रियादास, गुलाब लाल जी, वंशीधर चन्द्र सखी, रानी बखत कुंवरि 'प्रिया सखी' श्री हित रूपलाल (इनके ७५ ग्रन्थ हैं), अति वल्लभ जी, गो० रसिक लाल, गो० ब्रजलाल, लोकनाथ, गो० कमलनयन जी, सहचरि सुख जी, उत्तम दास जी, सुखलाल जी, जतनलाल जी, श्री चतुर शिरोमणि लाल जी, रंगीलाल जी, मनोहर वल्लभ जी, नरवाहन जी, दामोदर स्वामी, रामकृष्ण जी, सेवा सखी जी, परमानन्द जी, लाल स्वामी, प्रेमदास जी, ब्रज जीवन जी आदि।

गोस्वामी हरिदास का टट्टी अथवा सखी सम्प्रदाय :—

विट्ठल विपुल, बिहारिन देव, नागरीदास, सरसदेव, नरहरिदेव, पीताम्बर देव, रसिक देव, भगवत रसिक, ललित किशोर देव, बनीठनी देव, रूप सखी जी, शील सखी, चरणदास जी, ललित मोहनदास, किशोरदास आदि

निम्बार्क-सम्प्रदाय

श्री वृन्दावन देवाचार्य, बृजदासी, घनानंद (४० रचनाएँ), रूप रसिकदेव, हरिव्यास, श्री गोविंद देव, महारानी बांकावती, बाई सुन्दर कुंवरि जी, बनीठनी जी, नागरीदास, महाराजा सावंतसिंह, छत्र कुंवरिजी।

चैतन्य सम्प्रदाय

वल्लभ रसिक, माधवदास, मनोहर राय, प्रियादास, भगवत मुदित, किशोरीदास, गोस्वामी, सुबल श्याम, साधु चरणदास, ब्रह्मगोपाल, वृन्दावनदास, गोपाल भट्ट, वृन्दावन चन्द्र, वैष्णवदास, रस जानि, राधिकादास, गुण मंजरी, नील सखी, रामहरि, ललित सखी, गोकुलदास आदि।

वल्लभ सम्प्रदाय

गो० हरिराय जी, जगन्नाथ कविराय, श्री गिरधर, इच्छाराम, कटहरिया, कल्याण कृष्णदास जाडा, कृष्णा, केशव किशोर, गदाधर मिश्र, गिरधारी, गिरधरलाल, गोकुल, गोकुलनाथ, श्री ब्रजभूषण जी, श्री द्वारिकेश जी, गोपिकालंकार, गोपाल, श्री गोपाल लाल, गोवर्धनलाल, गोवर्धन दास, श्री काका बल्लभ जी, कृष्ण जीवन लछीराम, नागरीदास (७८ ग्रंथ), श्री सुन्दर वंता बहुजी, श्री ब्रजराय जी, (सूरत), गोविंददास चंदन, चतुरदास, जगतानन्द, जगन्नाथ प्रभु, जनकल्याण जनमोहन, जनभगवान, जनगोपाल, ताज, द्वारिकेश, नागजी, पर्वतसेन, पुरुषोत्तम, पुरुषोत्तमदास, प्रभुदास, बहादुरसिंह, बालकृष्ण ब्रह्मदास, भीम, मानदास, मोहनदास, माधोदास, मुरलीधरदास, मुरारिदास, रघुनाथ रसिक, विहारी, रामदास, वल्लभ, विष्णुदास, वैष्णवदास ब्रजराय, श्यामघन स्नेही, सगुणदास आदि अनेक कवि।

ललित सम्प्रदाय

वंशी अली जी, किशोरी अली जी, अलबेली अली जी आदि।

सम्प्रदायेतर कवि

इनके अतिरिक्त ब्रजवासीदास, ठाकुरदास, मंसाराम, परशुराम, कृष्णदास, रहीम और रसखान आदि अनेक कवियों ने भी कृष्ण काव्य लिखा।

मनबोध, चक्रपाणि, शिवदत्त, रामदास, लक्ष्मीनाथ गोसाईं, हरि किंकरदास आदि कवियों ने मैथिली में कृष्ण-भक्ति सम्बंधी प्रबंध-काव्यों अथवा गीतों की रचना की।

गुरुमुखी लिपि में उपलब्ध-कृष्ण-काव्य

(अनूदित एवं मौलिक)

श्रीमद्भागवत पुराण, भगवद्गीता, महाभारत, गीत-गोविंद के अनुवाद, कृष्णावतार (दशमग्रंथ), सुदामा चरित् (चार कवियों के अलग-अलग—उमा-दास, हिरदेराम, निहाल, साहबदास), उस्तुति कृष्ण जी की (नत्थमल), सम्वाद उधौ तथा गोपियों के (मसतराम), कथा श्री क्रिसन जी (सोढी मिहरवान), क्रिसनकौतूहल तथा मन्डल लीला (साहब सिंह मृगेन्द्र), श्री गिरधरलीला (क्रिसनदास), गोपी ऊधव संवाद (कुन्दन मिश्र), बालपन कृष्ण जी का (नजीर), ब्रिज बिलास (ब्रजवासीदास), रुक्मणी मंगल (जातीदास), कान्ह गूजरी का झगड़ा (फत्ता, सदारंग) आदि।

सूफी काव्य

जान कवि के पश्चात् जो भी सूफी प्रेमाख्यान हिन्दी में लिखे गए, वे इसी काल के अन्तर्गत आते हैं। उनमें से कुछ इस प्रकार है :—

'जान' कवि की ७५ रचनाएं मानी जाती हैं...प्रमुख हैं—कनकावती, कामलता, मधुकर मालती, रत्नावली आदि। अन्य रचनाएं-पुहुपावती (दुखहरनदास), ज्ञानदीप (शेखनबी), पुहुपावती (हुसैन अली), हंसजवाहर (कासिमशाह), इन्द्रावती (नूर मुहम्मद), अनुराग बांसुरी (नूरमुहम्मद), युसुफ जुलेखा (शेख निसार), नूरजहां (ख्वाजा अहमद), भाषा प्रेमरस (शेख रहीम), प्रेम दर्पण (कवि नसीर), कथा कुंवरावत (अलीमुराद) आदि।

इनके अतिरिक्त दक्खिनी में भी अनेक सूफी मसनवियों की रचना हुई।

जैन साहित्य

मनोहरलाल, हेमराज, हीरानंद, खडगसेन, टीकम, रामचंद, जोधराज गोदी, जगतराय, अभयकुशल, काशीराम, जिन हर्ष, माहिम समुद्र, लक्ष्मी वल्लभ-उपाध्याय, उपाध्याय धर्म वर्द्धन, आनन्द घन, विनय विजय, उपाध्याय यशो विजय, रामचन्द्र मान कवि, भैया भगवतीदास, भूधरदास, ध्यानतराय, विनोदीलाल अग्रवाल, गोदी, कवि लक्ष्मीचंद, श्री देवचंद, पं० खुशालचंद, काला, किशनसिंह, दिलाराम, लोहट, दौलतराम पाटनी, जिनरंग सूरि, मथेन उदयचंद, जोगीदास मथेन, नैनसिंह, विनयलाभ, दामोदर कवि, रतनशेखर, जयधर्म, लालचंद, दीपचंद, दौलतराम, कासलीवाल, ऋषि ज्ञान सार, कविवर दौलतराम, कवि बुधजन, कवि वृन्दावन, जयचंद, उत्तमचंद, उदयचंद, मेध कवि हरजसराय, रघुपति, पीरचंद, किशोरीदास, देवहष, मूलचंद श्रावक आदि।

दिगम्बर कवि

नवल साह, बखतराम, भूधरमिश्र, नथमल विलाया, हीरालाल, मनरंगलाल, विनयाभक्त, शिवचंद, हरकचन्द्र, सदासुख, कविवर भागचंद, सदानंद, चिदानंद आदि अनेक कवि।

संत साहित्य

भक्ति काल में ही संतों के अनेक सम्प्रदाय एवं पंथ स्थापित होने लगे थे। इस काल में आकर सम्प्रदायों एवं पंथों की संख्या और भी बढ़ी तथा उनके अन्तर्गत अनेक शाखाओं—प्रशाखाओं की भी स्थापना हुई। इन सम्प्रदायों में बहुत बड़े परिमाण में साहित्य-रचना हुई।

कबीर-पंथ, दादू-पंथ, बावरी-पंथ, मलूक पंथ, बिश्नोई सम्प्रदाय, निरंजनी

सम्प्रदाय, सिक्खमत, जसनाथी सम्प्रदाय, हीरादासी परंपरा, साध-सम्प्रदाय, लालपंथ आदि की स्थापना पहले ही हो चुकी थी। बाद में बाबा लाली, प्राणानाथी, सतनामी, धरनीश्वरी, दरियादासी, रामस्नेही, शिवनारायणी, अघोर-सरभंग, शुक्र, रविभाण, चरणदासी, सम्प्रदायों तथा गरीब पंथ, पानप पंथ, सांई पंथ आदि की स्थापना हुई।

इन विविध सम्प्रदायों-पंथों में संत सुरत गोपाल, संत धर्मदास, निश्चलदास, गरीबदास (रोहतकी), राघोदास, जगजीवनदास, दूलनदास, जोगीदास, घासीदास, चरणदास, सहजोबाई, दयाबाई, यारी साहब, केशवदास, बूला साहब, गुलाल साहब, भीखा साहब, हरलाल साहब, गोबिन्द साहब, पलटू साहब, संत तुरसीदास, मोहनदास, ध्यानदास, कल्याणदास, सेवादास, नरीदास, आत्माराम, रूपदास, षमजी मनोहरदासजी, हरिनामदास जी, प्यारे रामजी, रघुनाथदासजी, भगवान-दास, पूर्णदास जी, जानकीदासजी, प्राणनाथ, महात्मा मुकन्ददास, भूषणदास; बाबा धरनीदास, शिवनारायण, दरियाव जी, हरिरामदास, रामचरण, जसनाथ, संत सिंगा जी, संत वीर भान, संत लालदास, बाबा किनाराम, बाबा भीखमराम, बाबा भिनकराम, सदानंद बाबा, हरलाल बाबा, टेकमन राम, डीहूराम, प्राण पुरख, राम टहल, मनसा राम, छतरराम, लछिमी सखी, कामता सखी, सीतलराम, तालेराम, योगेश्वर, दरसनदास, रामसरूप, सबलराम, राम नेवाज, भगतीदास, रघुवीरदास, सूरत राम, मिसिरीदास, हरलाल, बालखंडी, भाण साहेब, चरणदास, गरीबदास, पानपदास, मोहनशाह आदि अनेक संत-कवियों ने काव्य रचना की। इनके अतिरिक्त अक्षर अनन्य, दीन दरवेश, संत बुल्लेशाह, संत गीता साहब, संत रोमल आदि अनेक संतों ने स्वतंत्र रूप से भी रचना की।

इस युग में आकर संतों में समन्वय की प्रवृत्ति विकसित हुई। प्राणनाथ, मोहनसाईं, रामचरणदास, शिवनारायण, दरियादास आदि ने संतमत का अन्य मतों-धर्मों से समन्वय का प्रयत्न किया। इन दिनों के सन्तों तथा साधारण-हिन्दू सम्प्रदायों के अनुयायियों के बीच का अन्तर अधिक नहीं रह गया था।[1]

पंजाब एवं हरियाणा का संत-काव्य

पंजाब और हरियाणा में सिक्खमत के अनेक सम्प्रदायों ने गुरुमुखी लिपि के माध्यम से भी इस युग में उत्कृष्ट कोटि का साहित्य लिखा। सिक्खमत के प्रमुख सम्प्रदाय हैं—उदासी सम्प्रदाय, निर्मले, नामधारी, सेवापंथी, अकाली, भगतपन्थी। इनके अतिरिक्त प्रिथीचंद के मीना पंथ, रामराय के रामैया पंथ तथा हंदल का हंदली सम्प्रदाय भी हैं।

१. उत्तरी भारत की संत-परंपरा, पृ० ५१५

यहां धार्मिक भावना से युक्त काव्य लिखने वाले प्रमुख संत कवि हैं—संतरेण, अमीरदास, कन्हैया जी, सेवाराम, सहजराम, गुलाबसिंह, सुक्खासिंह, संतोखसिंह, सरूपदास-भल्ला, सुखवासी राई, संतदास, पंडित रतनहरि, रामनारायण, हरीसिंह, सोहन, ब्रह्म अद्वैतानन्द, साहिबसिंह आदि।

इनके अतिरिक्त गुरु गोबिन्दसिंह तथा उनके दरबारी कवियों ने भी भक्ति-भावपूर्ण काव्य लिखा। पंजाब और हरियाणा के संत कवियों में गुरु गोबिन्दसिंह, भाई संतोखसिंह, संतरेण तथा निश्चलदास का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। ये चारों कवि इस काल की ऐसी महान् विभूतियां हैं कि इन चारों के आधार पर ही इस काल की भक्ति की प्रवृत्ति को अत्यन्त सशक्त एवं समर्थ घोषित किया जा सकता है।

'दशमग्रन्थ' में संकलित रचनाओं में से 'जापु', 'अकाल उस्तुति', 'ज्ञान-प्रबोध', 'श्री मुखवाक सवैये' आदि में आध्यात्मिक तत्वों की ही प्रधानता है। इनके अतिरिक्त 'चौबीस अवतार', 'विचित्र नाटक' तथा अन्य रचनाओं में भी धार्मिक-भावना ओतप्रोत है और आध्यात्मिक विचारों का प्रतिपादन हुआ है। 'दशम ग्रंथ' की ये सभी रचनाएं उच्च कोटि की भाव-भूमि पर आधारित अत्यन्त प्रेरणादायक एवं प्राणवान हैं। 'अकाल उस्तुति' इस दृष्टि से एक महत्त्वपूर्ण रचना है, जिसमें गुरु जी ने ब्रह्म के स्वरूप, सृष्टि रचना, आत्मा एवं जीव के स्वरूप, जगत की नश्वरता एवं आवागमन आदि पर विशदता से प्रकाश डाला है; ज्ञान, कर्म, योग, विरक्ति के स्वरूप को दर्शाते हुए भक्ति के महत्त्व का प्रतिपादन किया है और बाह्याचारों, मिथ्याडम्बरों आदि का खण्डन तीव्रता और तीखेपन से किया गया है तथा नाम-स्मरण, शुद्धाचरण आदि पर बल दिया है। पाखंडों का खंडन करते समय उनमें कबीर का सा स्वर सुनाई पड़ता है, वही तीखापन, वही प्रखरता, और वही चुभन। 'नाम' की महिमा का प्रतिपादन करते समय वैसी ही सहजता देखी जा सकती है।'[1]

इसी प्रकार भाई संतोखसिंह ने ५२ हज़ार छंदों का 'गुरु प्रताप सूरज' तथा ९००० छन्दों का 'गुरु नानक-प्रकाश' लिखकर बहुत ही सात्विक एवं ऊंचे दर्जे की भक्ति-भावना को अभिव्यक्ति दी है। उन्होंने भारतीय धर्म-साधना के विभिन्न तत्वों एवं दार्शनिक विचारों का विशद विवेचन करके सिक्खमत के आध्यात्मिक विचारों का निरूपण किया है। इनकी रचनाएँ एक ऐसी सांस्कृतिक चेतना से अनुप्राणित हैं, जो इस युग के समस्त साहित्य में दुर्लभ हैं। इसके इस गंभीर एवं व्यापक आध्यात्मिक बोध तथा प्रखर भक्ति-भावना का अनुशीलन करके 'रामचरित मानस' की याद ताज़ा हो जाती है। यह अकेला ही कवि अपनी इस

---

१. विस्तार के लिए दृष्टव्य—गुरु गोविंदसिंह विचार और चिंतन (लेखक)

आध्यात्मिकता के बलबूते पर इस समस्त युग की काव्य-चेतना को 'रीति' और 'श्रृंगार' के धरातल से ऊपर उठाने का सामर्थ्य रखता है।

संतरेण की 'नानक विजय', 'मन-प्रबोध', 'वचन संग्रह', 'नानक-बोध' आदि रचनाएँ प्राप्त हैं। संतरेण का 'गुरु नानक विजय' लगभग २५००० छंदों का बृहत् काव्य-ग्रंथ है। वह भी इसी तरह की सांस्कृतिक चेतना से अनुप्राणित है। इस रचना में भी कवि ने उदासी-सम्प्रदाय के आध्यात्मिक विचारों का निरूपण अत्यन्त गम्भीरता एवं विशदता से किया है तथा गुरु नानक के चरित्र कथन के माध्यम से अपनी भक्ति-भावना को तीव्रता से अभिव्यंजित किया है। इनके काव्य में भी श्रृंगारी युग की भोगवादी प्रवृत्ति से विमुखता एवं ईश्वरीय प्रेम की ओर उन्मुख करने का प्रयास किया गया है। रीतिकाल के प्रतिनिधि एवं प्रमुख कवि बिहारी एवं संतरेण के भाव-बोध का अन्तर निम्न छन्दों की तुलना करने से स्पष्ट हो सकता है।

बिहारी रतिरंग में अपनी आसक्ति प्रकट करते हुए लिखते हैं :—

'तंत्रीनाद कवित्त रस सरस राग रति रंग।
अनबूड़े बूड़े तरे जे बूडे सब अंग।।'

इसके विपरीत संतरेण 'कंचन एवं कामिनी' के मोह की भर्त्सना करते हुए लिखते हैं :—

'लख नाग सु आग समान तिनै,
भुल कै तिन संग न बात उचारे।
सभ ग्यान सु ध्यान भुलाइ दए,
निज नैनन कोर दिखाइ सु नारे।
निज रूप दिखाई हरै मन को
चित के टुकरे-टुकरे करि डारे।
इम संतहि रेण कहै अबला,
बिन ही बरछी तलवार सु मारे।'

(मन प्रबोध)

एक में नारी भोग और आकर्षण की वस्तु है, तो दूसरे में त्याग एवं वितृष्णा की। इसी तरह भाई संतोखसिंह एवं निश्चलदास ने भी भोग-विलास की भर्त्सना की है।[1]

—संत निश्चलदास भी ऐसे ही उत्कृष्ट संत कवि हैं। उन्होंने तीन ग्रंथ लिखे—'विचार-सागर' 'वृति-प्रभाकर' एवं 'मुक्ति-प्रकाश'। 'विचार-सागर' उनकी कीर्ति का स्तंभ है, जिसमें उन्होंने भारतीय दर्शन, वेदान्त एवं धर्म-साधना का

---

१. दृष्टव्य—परिशिष्ट आध्यात्मिकता, भाई संतोखसिंह एवं संत निश्चलदास

अत्यंत गंभीरता से निरूपण किया है। स्वामी विवेकानन्द का उस ग्रंथ के सम्बन्ध में कथन यहां उल्लेखनीय है। उन्होंने इसे भारत के अन्तर्गत तीन शताब्दियों में लिखे गए किसी भी भाषा के ग्रंथों में सब से अधिक प्रभावशाली बताया है।'[1]

गुरु गोबिंदसिंह तथा 'दशम ग्रंथ' पर अनेक शोध प्रबन्ध लिखे जा चुके हैं और कुछ लिखे जा रहे हैं। भाई संतोखसिंह तथा निश्चलदास पर भी स्वतन्त्र-रूप से शोध-प्रबंध लिखे गए हैं, जिनमें इनकी आध्यात्मिक चेतना एवं काव्य-सौष्ठव का समुचित मूल्यांकन हुआ है।

पंजाब एवं हरियाणा का यह संपूर्ण संत-साहित्य यहां के सामाजिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक जागरण, युग बोध एवं धार्मिक तथा राजनैतिक आंदोलनों को अभिव्यक्ति देता है, उनसे प्रभावित है और उन्हें प्रश्रय एवं प्रोत्साहन देने वाला है।

राजस्थानी संत-साहित्य के संबंध में भी श्री उदयसिंह भटनागर ने लिखा है कि 'राजस्थान का संत-साहित्य राजस्थान में होने वाले सामाजिक और धार्मिक आंदोलनों का द्योतक है।···निर्गुण उपासना को लेकर भी यहां कई पंथों का विकास हो गया था, जिनके साहित्य में धर्म और दर्शन के साथ-साथ काव्य-लालित्य तथा कला का समावेश है।'[2]

निष्कर्ष

इस विवरण से स्पष्ट है कि इस काल में आकर भक्ति की धारा अवरुद्ध नहीं हुई वरन् वह उसी वेग के साथ निरन्तर प्रवाहमान् रही, जिसके फलस्वरूप इस युग में मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश, मिथिला, राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, हरियाणा एवं पंजाब में सैंकड़ों भक्त, संत, सूफी एवं जैन कवियों ने सहस्रों की संख्या में भक्ति-संबंधी रचनाओं का प्रणयन किया। बहुत समय तक यह साहित्य विविध कारणों से उपेक्षित रहा है, लेकिन इधर कुछ वर्षों से इसके विधिवत् अध्ययन की चेष्टा की जा रही है और इसलिए अब इसके महत्त्व का भी पता चल रहा है।

इस युग के भक्त-कवियों में कुछ ऐसे अवश्य हैं, जिन पर 'रीति' अथवा शृंगारिकता का प्रभाव परिलक्षित होता है। पर केवल इसी लिए तो उनकी उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए। 'रीति' का प्रभाव तो सूर एवं तुलसी पर भी खोजा गया है और विद्वानों ने निश्चित रूप से यह मत प्रकट किया है कि 'रीति' और 'भक्ति' की दोनों प्रवृत्तियां सैंकड़ों वर्षों की परम्पराओं के विकसित

---

१. उत्तर-भारत की सन्त-परम्परा से उद्धृत। पृ० ५१५
२. हिन्दी-साहित्य, भाग—२, पृ० ५७८

रूप हैं। भक्तिकाल में 'रीति' की और रीतिकाल में 'भक्ति' की प्रवृत्ति समानान्तर प्रवाहित होती रही।

जहां तक श्रृंगारिकता का प्रश्न है, इसके दो पहलू हैं। एक तो वे कवि हैं - रीतिबद्ध तथा स्वछंदतावादी कवि—जिनमें श्रृंगारिकता की प्रधानता है और 'भक्ति-भावना' गौण है। इन कवियों के सम्बन्ध में संभवतः यह कहा जा सकता है कि "इन कवियों में वह ऊर्जस्विता न थी कि वे 'संतन को कहा सीकरी सों काम' की घोषणा कर सकें अथवा प्राकृत जन गुणगान से असंपृक्त रह सकें।"[1]

दूसरा पक्ष है उन राम एवं कृष्ण भक्त कवियों का जिन्होंने 'मधुर-उपासना' की पद्धति को अंगीकार किया और उसके माध्यम से राम और सीता की...अथवा राधा एवं कृष्ण की या गोपियों एवं कृष्ण की अनेक श्रृंगारी लीलाओं का वर्णन किया है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि १७वीं, १८वीं एवं १९वीं सदी में राम एवं कृष्ण भक्ति के साहित्य में प्रेमा-भक्ति की ही प्रधानता है और राम एवं कृष्ण की अनेक ऐसी लीलाओं का वर्णन प्रचुरता से हुआ है, जिस पर मर्यादावादी भक्त एवं समीक्षक नाक-भौं चढ़ाते रहे हैं, और इसीलिए इस साहित्य की अभी तक उपेक्षा भी होती रही है। लेकिन अब यह महसूस किया जाने लगा है कि इस साहित्य का मूल्यांकन अधिक सहृदयता से होना चाहिए।

इस सम्बन्ध में पहली बात तो यह है कि प्रेमा-भक्ति और मधुर-उपासना का प्रचलन इस युग की श्रृंगारी प्रवृत्ति की देन नहीं है। वरन, 'मधुर उपासना' अत्यन्त प्राचीन काल से भारतीय धर्म-साधना का एक अभिन्न एवं महत्त्वपूर्ण अंग रही है।[2] भक्ति काल में कृष्ण-भक्त कवियों ने सबसे अधिक महत्त्व 'माधुर्य-भाव' को ही दिया है। भक्तिकाल में रचित 'राधा-वल्लभ' सम्प्रदाय तथा हरिदास जी के 'टट्टी सम्प्रदाय' का साहित्य इस दृष्टि से उल्लेखनीय है। वल्लभ-सम्प्रदाय में दीक्षित नन्दलाल जी के काव्य में भी उस दृष्टि से कम श्रृंगारिकता नहीं है। 'रास-पंचाध्यायी' की रास-लीलाओं में ऐहिकता की कमी नहीं है और फिर जयदेव, चंडीदास एवं विद्यापति की तो बात ही कौन कहे। उनकी भक्ति तो ऊपर से नीचे तक 'तथा-कथित श्रृंगार' में डूबी हुई है। अस्तु, इस काल के कृष्ण-काव्य की प्रेमा भक्ति को 'दूसरी आंख' से देखना कदाचित् उचित नहीं है।

अब रही बात राम भक्ति साहित्य की। इसमें सन्देह नहीं कि बहुत समय तक राम भक्ति 'तुलसीदास' के साथ पर्याय रूप में स्वीकृत होती रही है। अर्थात्

---

१. हिन्दी-साहित्य का बृहत् इतिहास, भाग ६, पृ० १८४

१. प्रेमा-भक्ति के लिए दृष्टव्य —ब्रजभाषा काव्य में प्रेमाभक्ति—(देवीशंकर अवस्थी)

राम को 'मर्यादापुरुषोत्तम' और उनकी भक्ति को 'मर्यादावादिनी' के रूप में ही मान्यता मिलती रही। विशेष रूप से शुक्ल जी ने, जो कि स्वयं मर्यादावादी थे, इस मान्यता को स्थापित करने में कुछ उठा नहीं रखा। वे तो भक्ति-काल के, कृष्ण के रसेश्वर रूप के उपासक अष्टछाप के सरस कृष्ण भक्त कवियों को भी उचित सम्मान नहीं दे पाए। वे काव्य में लोकमंगल की 'साधनावस्था' के प्रशंसक थे, सिद्धावस्था के नहीं। सम्भवतः इसीलिए उन्हें 'गीतावली' के राम की मधुर-उपासना से सम्बन्धित पदों को सूरदास के घोषित करना पड़ा था और इस प्रकार जब शुक्ल जी जैसे आचार्य ने मधुर उपासना के सम्बन्ध में अपना एक पक्षीयफतवा दे दिया, तो बाद के 'अनुकरण-प्रेमी' हिन्दी समीक्षक बेचारे क्या कर सकते थे।

लेकिन, आज का समीक्षक यह अनुभव करता है कि 'भगवान राम के दिव्य पुनीत चरित्र को और उनकी दिव्य-लीलाओं को एक सीमा में बांधना उचित प्रतीत नहीं होता।'[1] इस सम्बन्ध में डा० भुवनेश्वर प्रसाद मिश्र का कहना है कि 'स्वामी मधुराचार्य से लेकर रूपकला जी तक अनेक सन्त महात्माओं और अनुभवी साधकों ने रसिकोपासना में अपने अनुभव को बड़ी ही भव्य, सुन्दर शैली में व्यक्त किया है और हज़ारों ऐसे ग्रंथ हैं, जिनमें यह उपासना साहित्य विद्यमान है और जिनका अध्येता कभी घाटे में नहीं रहेगा...। अतः इस सम्पूर्ण साहित्य को अमर्यादित बताकर अलग कर देना साहित्य के अध्येता के लिए शोभा नहीं देता।' आगे वे लिखते हैं कि यह स्वीकार करना होगा कि इस उपासना के साहित्य में कुछ अनधिकारियों द्वारा विकृति आई है, पर उससे बिचक कर यदि हम आगे खड़े हुए और इसके स्वस्थ साहित्य के अध्ययन अनुशीलन से वंचित रह गए तो यह हमारा दुर्भाग्य होगा।[4]

निस्संदेह तुलसीदास के पश्चात् 'राम-भक्ति' पर भी कृष्ण की मधुर-उपासना का प्रभाव बढ़ने लगा था और आलोच्यकाल का अधिकांश राम-भक्ति साहित्य अयोध्या और जनकपुरी के स्वसुखी, तत्सुखी तथा चित्सुखी सम्प्रदायों में ही लिखा गया; जिनमें 'रसिकोपासना' की ही प्रधानता है। लेकिन, हमने गुरु-मुखी लिपि में रचित जिन 'राम काव्यों' का उल्लेख ऊपर किया है, उनमें इस तरह की मधुर-उपासना के दर्शन नहीं होते। उनमें पंजाब की जागृत युग चेतना का प्रभाव है और यही कारण है कि यहां 'रामावतार' जैसे वीर रसात्मक काव्यों

---

१. राम-भक्ति साहित्य में मधुर-उपासना, पृ० १० (डा० भुवनेश्वर नाथ-मिश्र 'माधव')

२. वही

३. वही

४. वही, पृ० १२

की भी रचना हुई। गुरुमुखी लिपि में रचित 'कृष्ण-काव्य' के सम्बन्ध में भी बहुत कुछ ऐसा ही कहा जा सकता है।

दूसरे, मधुरोपासना के 'राम-भक्ति' साहित्य में यह प्रभाव 'कृष्ण-भक्ति' से प्राप्त हुआ न कि 'रीतिकाव्य' की शृंगारिकता से। जो कुछ शृंगारिकता इसमें आई भी है, वह प्रायः कृष्ण-भक्ति साहित्य के माध्यम से ही आई है और क्योंकि मधुर उपासना भक्ति का ही एक महत्त्वपूर्ण एवं विशिष्ट रूप है, इसलिए इस युग के मधुर-उपासना से सम्बन्धित कृष्ण या राम-काव्य की भी स्वतन्त्रसत्ता है। यह 'भक्ति-काव्य' है न कि 'रीति-काव्य' या 'शृंगारी-काव्य'। अर्थात्, वह उस युग की भक्ति की सबल प्रवृत्ति का ही परिचायक है। उसका स्वरूप कुछ भिन्न हो सकता है...हालांकि भिन्न भी इतना नहीं है। अतः रीतिकाल के प्रेमा-भक्ति के कवियों पर शृंगारिकता का लेबिल लगाकर उनकी उपेक्षा करना उचित नहीं है।

यह सत्य है कि इन राम-भक्त कवियों में 'तुलसी' जैसा सबल व्यक्तित्व नहीं है, पर राम-भक्ति का तुलसी-सा दूसरा कवि 'भक्ति-काल' में भी कहां है। राम-भक्ति से सम्बन्धित जिस स्तर और शक्ति के अन्य कवि भक्ति-काल में मिलते हैं, वैसे इस काल में भी मिल सकते हैं। 'रामावतार' (दशम ग्रंथ) इस युग का एक विशिष्ट एवं महत्त्वपूर्ण 'रामकाव्य' है।

इस युग के प्रेमा-भक्ति के साहित्य के सम्बन्ध में यह भी कहा जाता है कि अनुभूति की आवेगात्मकता की दृष्टि से भक्तिकालीन प्रेमा-भक्ति काव्य की अपेक्षा यह हीनतर है। डा० देवीशंकर अवस्थी ने इसके दो प्रमुख कारणों का उल्लेख किया है। सम्प्रदायों के बन्धन कड़े होने के कारण काव्य-सृजन के प्रकृत विकास का मार्ग अवरुद्ध होना; शृंगारिकता का जो भ्रम उनके काव्य के सम्बन्ध में उत्पन्न हो रहा था, उससे बचाने के लिए सिद्धान्त-निरूपण की मात्रा का बढ़ना। इसलिए १८वीं शती के इन कवियों का साहित्य पूर्ववर्ती भक्तकवियों का पिष्टपेषण जैसा प्रतीत होने लगता है।[1]

सम्प्रदायों के बन्धन कड़े होने का आरोप सम्भवतः १७वीं शती के कवियों पर नहीं लगाया जाएगा। जहां तक सिद्धान्त कथन का सम्बन्ध है, वह तुलसीदास तथा नन्ददास में भी कम नहीं है। यदि उससे उनके काव्य की कोई क्षति नहीं होती, तो इन कवियों के लिए वह दोष क्योंकर बन सकता है। जहां तक पिष्टपेषण का सम्बन्ध है, डा० अवस्थी स्वयं स्वीकार करते हैं कि "पिष्टपेषण का कारण अनुभूति-ग्रहण की अक्षमता या किसी प्रकार की अशक्तता नहीं है। कारण है, लीला के अत्यन्त सीमित क्षेत्र को स्वीकार करना। काव्य की दृष्टि से यह भक्ति का अपव्यय था और प्रेम-साधना की दृष्टि से अपूर्व निष्ठा का उदाहरण[2]।

---

१. ब्रजभाषा काव्य में प्रेमा-भक्ति०, पृ० ४५५-४५७ पर आधारित

२. वही, पृ० ४५५

जब इस साहित्य को वे स्वयं उनकी प्रेम-साधना की अपूर्व निष्ठा स्वीकार करते हैं, तो उनकी अनुभूति को किसी भी तरह हीनतर कहना असंगत है। रही बात पिष्टपेषण की, वह तो कुछेक को छोड़कर रीतिकाल के सभी शृंगारी कवियों में भी देखा जा सकता है। 'रीति-रचना' में तो मौलिकता नाम की किसी चीज़ का सर्वथा अभाव है ही; रीति-कवियों में संभवतः प्रेम-साधना की वह निष्ठा भी उतनी नहीं है जिसका उल्लेख अवस्थी जी ने इन भक्त कवियों के लिए किया है।

इस युग में सबसे अधिक महत्वपूर्ण रचनाएँ जैन एवं संत कवियों की हैं, जिनमें आध्यात्मिकता एवं भक्ति का पूर्ण उत्कर्ष देखा जा सकता है। १७ वीं से १९वीं शती तक राजस्थान, गुजरात, सौराष्ट्र, हरियाणा, पंजाब आदि में हिन्दी जैन कवियों की छोटी-बड़ी हज़ारों रचनाएँ लिखी गईं। इनमें चरित्र-काव्यों की प्रधानता है और वे धर्म, नीति, आध्यात्मिक प्रेरणा से ओतप्रोत हैं। जनता के नैतिक स्तर को ऊपर उठाने में उनका बहुत बड़ा हाथ है। उनमें 'शान्त रस' की अखंड धारा वह रही है। इनमें आध्यात्मिकता, भक्ति और वैराग्य की प्रेरणा का स्रोत बहुत ही उत्तम रीति से प्रवाहित हुआ है, जिससे जनता का बहुत बड़ा कल्याण हुआ है। विलास की ओर से उसे हटा कर धर्माभिमुख किया है।[1] इस काव्य में रीतिकाव्य की शृंगारिकता के सर्वथा प्रतिकूल भाव-धारा बह रही है। रीतिकाव्य विलास की ओर उन्मुख करता है, जबकि जैन काव्य का उद्देश्य विलास से विमुख करना है। इस युग के कृष्ण एवं राम-भक्ति के काव्य पर शृंगारिकता का जो आरोप लगाया जाता है, उससे भी यह सर्वथा मुक्त है।

एक समय था जब शुक्ल जी ने 'जैन-साहित्य' पर धार्मिकता का लेबिल लगा कर उसे साहित्य की परिधि से बाहर निकाल दिया था, लेकिन कालान्तर में उसे ऐसा महत्वपूर्ण स्थान मिला कि उससे उनकी मान्यताएँ ही हिल गईं। इस युग के साहित्य में भी इस तरह की रचनाओं को यथोचित स्थान मिलना चाहिए, क्योंकि इस तरह के सैंकड़ों जैन कवि हैं, जिन्होंने इस युग में, 'शांत-रस' प्रधान काव्य-रचना की। उनके कवित्व की परीक्षा के लिए अभी उनके साहित्य का यथोचित अध्ययन अपेक्षित हैं।[2]

वैसे भी यदि 'संत साहित्य' को साहित्य के इतिहास में यथोचित स्थान मिल सकता है, तो इन जैन कवियों को उचित सम्मान क्यों नहीं मिलना चाहिए।

इस युग के भक्ति साहित्य में सबसे अधिक महत्त्व संत-साहित्य का है।

---

१. दृष्टव्य—हिन्दी-साहित्य, भाग २ (लेख—अगरचन्द नाहटा, जैन-साहित्य)

२. परिचय के लिए दृष्टव्य—हिन्दी साहित्य भाग २, पृ० ४७५-५१३

'रीति-काव्य' की समीक्षा करने वाले विद्वानों का कुछ ध्यान 'संत-साहित्य' की ओर गया अवश्य, किन्तु उसके सम्बन्ध में जो मत उन्होंने व्यक्त किया है, वह सर्वथा निर्भ्रांत नहीं है। संभवतः उस युग में रचित 'संत-साहित्य' की आंशिक सामग्री ही उनके समक्ष रही ही। तभी तो डा० नगेन्द्र ने कहा था कि "इन कवियों ने न तो तत्वदर्शन में कोई मौलिक योग दिया, न संत साहित्य की विशेष श्रीवृद्धि की, उनमें पूर्ववर्ती संतों के सिद्धांतों की पुनरावृत्ति ही है।"[1] आगे वे लिखते हैं कि "ये लोग तो बानियों के प्रचारक मात्र थे, सृष्टा नहीं। प्रगति और सुधार का वह दुर्दम उत्साह, आहत आत्मा की वह पुकार, जिसने १५वीं शताब्दी में सामाजिक और धार्मिक क्रांति उपस्थित कर दी थी, उस पतन-काल में संभव नहीं थी।"[2]

डा० नगेन्द्र का यह कथन एक सीमित क्षेत्र के 'संतकाव्य' के संबंध में ही शायद ठीक हो सकता है अन्यथा महाराष्ट्र के संतों के सम्बन्ध में वे स्वयं लिखते हैं कि "महाराष्ट्र में अवश्य इस समय तुकाराम के अभंगों और रामदास के 'दास बोध' द्वारा धार्मिक जागृति हो रही थी।" तुकाराम को वे स्वयं तुलसी और सूर की कोटि के संत-कवि मानते हैं।[3]

राजस्थान, हरियाणा तथा पंजाब के सम्बन्ध में भी वे लिखते हैं कि "आत्म-रक्षा के निमित्त हिन्दू-धर्म के विभिन्न समुदायों में भी चेतना जागृत हो रही थी। नारनौल मेवाड़ के सतनामी मत के लोगों ने भयंकर धार्मिक विश्वास का परिचय दिया। पंजाब के सिक्खों का असंतोष बढ़ रहा था। गुरु तेग बहादुर की हत्या और गुरु गोबिंदसिंह के बच्चों पर किए गए पाशविक अत्याचारों ने उनको तिलमिला दिया था।"[4]

इस प्रकार इन प्रदेशों में जागृत धार्मिक-चेतना की ओर तो उनका ध्यान गया, किन्तु इस जागृति की प्रेरणा स्वरूप जो प्राणवान साहित्य वहां लिखा गया, उसकी ओर उनका ध्यान नहीं जा सका। पंजाब को वे हिन्दी-क्षेत्र से बाहर मानते रहे। स्वाभाविक भी था, क्योंकि उस समय तक (रीतिकाव्य की भूमिका के लेखन के समय तक) पंजाब में गुरुमुखी लिपि में रचित ब्रजभाषा-काव्य हिन्दी विद्वानों के सामने ही नहीं आया था। लेकिन, अब स्थति बहुत बदल चुकी है। उस सशक्त सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक चेतना की प्रेरणा-स्वरूप, जो सिक्खों के दशमगुरु के साथ पंजाब और हरियाणा में प्रकट हुई थी, यहां अत्यंत समर्थ, सशक्त एवं उत्कृष्ट कोटि का साहित्य लिखा गया। यहां के

---

१. रीति काव्य की भूमिका, पृ० २

२: वही, पृ० १८

३. वही, पृ० ३-४

प्रबंध-काव्यों एवं वीरकाव्यों में भी धर्म-भावना एवं भक्ति-भावना की प्रवृत्ति का चर्मोत्कर्ष देखा जा सकता है।

ऊपर के विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि 'भक्ति' भी रीतिकाव्य की समकालीन समानान्तर प्रवाहमान एक सशक्त एवं जीवंत धारा है। रीतिकाल के लगभग सभी 'रीति-काव्यों' एवं स्वछंदतावादी कवियों में भी किसी न किसी रूप में भक्ति-भावना के दर्शन होते हैं; भले ही परिमाण एवं महत्त्व की दृष्टि से उनमें रीति-तत्व अथवा शृंगारिकता की प्रधानता है।

इसके विपरीत इस काल में सैकड़ों भक्त, जैन एवं संत कवि ऐसे हुए हैं जिन्होंने सहस्रों की संख्या में भक्ति ग्रंथ लिखे हैं। उनमें कुछ ऐसे हैं, जिनमें 'रीति-तत्व' अथवा शृंगार-तत्व' के भी दर्शन होते हैं, लेकिन उनमें भक्ति-भावना कहीं अधिक है। बहुत बड़ी संख्या में भक्ति-ग्रंथ ऐसे भी हैं, जिनमें रीति-तत्वों एवं शृंगारिकता का प्रायः अभाव है।

कवियों की संख्या एवं उनके द्वारा रचित भक्ति-ग्रन्थ परिमाण एवं महत्त्व की दृष्टि से 'रीति-ग्रन्थों' अथवा शृंगार-ग्रन्थों से अधिक हैं।

रीतिकाल में कुछेक ही ऐसे श्रेष्ठ कवि हैं, जिनके नामों का उल्लेख बार-बार किया जाता है—यथा देव, बिहारी, पद्माकर, घनानन्द, मतिराम आदि। इस युग के उत्कृष्ट भक्त-कवियों की संख्या और उनकी श्रेष्ठता की मात्रा इनसे कहीं अधिक है। गुरु गोबिंदसिंह, भाई सन्तोखसिंह, संतरेण, भाई गुरदास, सन्त निश्चलदास, गुलाबसिंह आदि पंजाब और हरियाणा के अनेक ऐसे कवि हैं, जो उपर्युक्त रीति-कवियों से कहीं अधिक श्रेष्ठतर एवं गरिमापूर्ण हैं। इनमें से, हरियाणा के दो सन्त कवि सन्तोखसिंह एवं निश्चलदास ही ऐसे समर्थ एवं सशक्त संत कवि हैं, जो कि युग-धारा को नया मोड़ देने वाले हैं तथा साहित्य-साधना के नए आयाम-प्रतिमान स्थापित करते हैं।

अतः, हम विश्वासपूर्वक कह सकते हैं कि परिमाण एवं गरिमा की दृष्टि से इस युग का भक्ति-साहित्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है और भक्ति भी इस युग की एक अत्यन्त प्रबल एवं प्रमुख प्रवृत्ति है।

४

रीतिकाल के कवि का व्यक्तित्व, बोध एवं जीवन-दर्शन

विद्वानों का मत है कि 'रीतिकवि' के व्यक्तित्व में सामान्य रूप से चारण, सभाकवि, राजगुरु, आचार्य और भक्त का न्यूनाधिक समन्वय था। वे प्रायः निम्न वर्ग से सम्बन्धित थे, किन्तु उन्हें काव्य-रचना की प्रेरणा राज-दरबारों के वैभव-विलासपूर्ण वातावरण से मिलती थी। आश्रयदाता राजाओं एवं सामन्तों आदि का जीवन जिस प्रकार वैभव और विलास से युक्त था उसी प्रकार वे कवि भी वैसा ही जीवन जीने की लालसा रखते थे और इसलिए कंचन और कामिनी के प्रति ही उनका सर्वाधिक आकर्षण था।

'रीतिकवि' के व्यक्तित्व की एक झलक, 'आनन्द' एवं बिहारी की निम्न पंक्तियों से भली प्रकार मिल सकती है :—

'मनुज रूप ह्वै अवतयो तीन वस्तु को जोग।
द्रव्य उपार्जन हरि भजन अरु कामिनी संग भोग।

(कोक मंजरी-आनन्द कवि)

अथवा

'तन्त्री नाद कवित्त रस सरस राग रति रंग!
अनबूडे बूडे तरे जे बूडे सब अंग।'

(बिहारी)

वस्तुतः, रीतिकवि में 'आध्यात्मिक अर्थ का सन्दर्भ प्रदान किए बिना सहज मानवीय इच्छा-आकांक्षाओं की स्वीकृति है, ऐंद्रिक पिपासा की पूरी व्याप्ति है। ...."इहलौकिकता के अनुरूप उसमें यश-अर्थ की कामना प्रधान थी।"[1] अलौकिकता और आध्यात्मिकता का पुट तो थोड़ा बहुत इस काव्य में संस्कार-वश है। रीतिकाव्य का रचयिता यौवन और वसन्त का कवि है।"

डा० नगेन्द्र का मत है कि 'रीतिकवियों का दृष्टिकोण बद्ध और संकुचित

---

१. रीतिकाव्य, पृ० ३०-३१

था। भौतिक जीवन के आर-पार देखने वाली दृष्टि तो उन्हें प्राप्त थी ही नहीं। भौतिक-जीवन के अन्तर्गत भी उनकी गति अत्यन्त सीमित और परिबद्ध थी। आधार-फलक इतना सीमित है कि जीवन की अनेकरूपता के लिए उसमें स्थान ही नहीं है।"[1] जीवन के मूलगत गंभीर प्रश्नों का स्पर्श भी वे नहीं करते, उनका गहन विवेचन और समाधान तो दूर रहा। जीवन की वास्तविकताओं से आमने-सामने खड़े होकर टक्कर-लेने में ही व्यक्ति की सम्पूर्ण चेतना, उसकी समस्त शक्तियों की परीक्षा होती है, तभी व्यक्तित्व का विकास होता है। वह इस युग में नहीं था। घोर अव्यवस्था से क्षत-विक्षत सामन्तवाद के भग्नावशेष की छाया में त्रस्त और क्षीण जीवन एक बंधी हुई लीक पर पड़ा हुआ यंत्रवत चल रहा था। क्या सामाजिक क्षेत्र में और क्या सांस्कृतिक क्षेत्र में सर्वत्र ही वैयक्तिक स्फूर्ति और उत्साह निःशेष हो चुका था। ···रीति कवि की भी मौलिक सृजन-क्षमता नष्ट हो चुकी थी, केवल रीतियों की दासता मात्र रह गई थी।"[2]

डा० बच्चनसिंह का मत है कि 'बौद्धिक ह्रास और चिंतन-हीनता के इस युग में चिंतन का विषय भोग-भावना तक ही सीमित हो गया।···इस समय तक थकान और चिंतन-हीनता अपनी चरम-सीमा पर पहुंच गई थी, फलतः **कवि-सामंत** संपूर्णभावेन घोर श्रृंगार में आकंठ मग्न हो गए। ···रीतिकालीन जीवन दर्शन एक सीमित घेरे में बंध गया था। इस सीमित घेरे से बाहर जाकर···जीवन के उतार-चढ़ाव, उत्थान-पतन, आशा-आकांक्षा की स्फूर्तिदायिनी छवियों का चित्रण उसके लिए संभव न था।"[3]

डा० भगीरथ मिश्र के अनुसार 'वह तो फलते-फूलते जीवन का भ्रमर है। उसने जीवन का एक ही स्वरूप लिया और एक ही पक्ष लिया, यही इस धारा के कवि की संकीर्णता है, दुर्बलता है एकांगिता है।"[4]

डा० जगदीश गुप्त भी 'रीति-कवि' के व्यक्तित्व और जीवन-दृष्टि का विश्लेषण करके इसी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि 'रीतिकवियों के पास कोई गहरी जीवन दृष्टि थी, ऐसा प्रतीत नहीं होता। जीवन दृष्टि सुदीर्घ अनुभव, गहरे आत्म-मंथन और प्रौढ़ तत्वचिंतन का परिणाम होती है, जबकि किसी भी रीति कवि में ये बातें समष्टि रूप से लक्षित नहीं होतीं। उनके भीतर ऐसे प्रखर व्यक्तित्व का प्रायः अभाव दिखाई देता है, जो उचित-अनुचित का विवेक रख कर उचित का दृढ़ समर्थन और अनुचित का सक्रिय विरोध करने को तत्पर

---

१. रीतिकाव्य की भूमिका, पृ० १७८
२. रीतिकाव्य की भूमिका, पृ० १७९
३. हिन्दी-साहित्य का बृहत् इतिहास, भाग ६, पृ० १८६-१८७
४. हिन्दी-साहित्य, भाग २, पृ० ४०१

हो जाता है। ···उन्होंने यह भी कहा है कि 'दरबारी वातावरण से हटकर लोक-सामान्य जीवन को उन्मुक्त-भाव से स्पर्श करने का भी अवसर उन्हें प्रायः नहीं मिला। उसकी गहराई में पैठकर कुछ उपलब्ध करने का तो प्रश्न ही नहीं उठता।···उनमें सौन्दर्य-प्रियता, रसिकता, कला-कुशलता, काव्य-शास्त्रीयता तथा राजाश्रय एवं राज-सम्मान की कामना ही प्रमुख थी।''[1]

उपर्युक्त मतों के इस विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि रीति-कवि का व्यक्तित्व अत्यन्त अशक्त एवं अक्षम था। इन कवियों में उन्मुक्त रूपासक्ति, ऐश्वर्य, वैभव एवं विलास की कामना ही अधिक थी। न तो सामाजिक जीवन से उनका गहरा सम्बन्ध था और न ही वे युग-चेतना को कोई नई दिशा दे सके। उनकी जीवन-दृष्टि (बोध) अत्यन्त सीमित रूढ़िबद्ध एवं एकांगी थी। उनमें स्वतन्त्र चिंतन एवं स्वस्थ अनुभूत्यात्मक जीवन-दृष्टि का प्रायः अभाव था। वे न तो मनुष्य की सौन्दर्य-चेतना में परिष्कार ला सके और न ही मानवीय जीवन के मूलभूत प्रश्नों का स्पर्श कर सके। उनका साहित्य प्रवृत्ति-मूलक है और प्रायः वासना को जाग्रत करता है। उसमें जीवन की सम्पूर्णता का अभाव है।

विद्वानों का यह विवेचन एक विशेष परिपाटी के कवियों पर ही आधारित है, जिन्हें 'रीति-कवि' की संज्ञा दी जाती है। इस परिपाटी के कवियों के अतिरिक्त उस युग में सैंकड़ों ऐसे रामभक्त, कृष्ण भक्त, जैन, सूफी एवं संत कवि भी हैं, जिनके व्यक्तित्व में चारण, भाट, आचार्य, सभा-पंडित अथवा राजगुरु का समन्वय नहीं है और न ही वे विलासी या रसिक हैं। धर्म-भावना ही उनके व्यक्तित्व का प्रमुख तत्व है। पंजाब एवं हरियाणा के जिन कवियों का उल्लेख पीछे हुआ है, उनमें से अनेक कवि ऐसे हैं, जिनका व्यक्तित्व अत्यन्त शक्तिशाली तथा जीवन-दृष्टि अत्यधिक व्यापक, गहरी एवं मंगलकारी है। ऐसे कवि भी हैं, जिनके व्यक्तित्व में भक्त एवं योद्धा का अद्भुत समन्वय हुआ है।

इस युग में सबसे अधिक विलक्षण व्यक्तित्व गुरु गोविंदसिंह का है जो कि इस युग के एक उत्कृष्ट कवि भी थे। उनका व्यक्तित्व तड़ित-सा तेजस्वी और सिंह-सा सशक्त था। सत् धर्म की रक्षा एवं दीनों के उद्धार के लिए वे अदम्य साहस के साथ युग की अनाचारी शक्तियों से जूझ पड़े थे। धर्म गुरु होते हुए भी अनीति और अन्याय का सामना उन्होंने एक शूरवीर की तरह किया। वे शत्रु के लिए वज्र से भी अधिक कठोर, कठिन से कठिन परिस्थिति में भी अद्भुत धैर्य रखने वाले, भारतीय संस्कृति के उन्नायक एवं हिन्दू-धर्म के रक्षक थे। वे एक युग-पुरुष के प्रखर व्यक्तित्व के धनी थे। यह सन्त-सिपाही भारतीय इतिहास का

---

१. रीति-काव्य, पृ० ३२

एक विलक्षण व्यक्तित्व है, जिसने समाज और धर्म के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन पैदा किये, युग की धारा को बदल दिया और पंजाब के जन-जीवन को नई दिशा दी। साधारण वर्ग में भी अद्भुत साहस और शक्ति का संचार किया और उनके जीवन को आध्यात्मिकता की ज्योति से आलोकित किया। 'खालसा' उनके व्यक्तित्व और बोध का प्रतिरूप था।

गुरू गोबिन्दसिंह ने जीवन के उतार-चढ़ाव और संघर्ष खूब झेले थे। उनके पिता की अमानुषिक हत्या तथा पुत्रों का बलिदान इनके जीवन की रोमांचकारी घटनाएं हैं। उन्होंने अपने सम्पूर्ण जीवन और साहित्य में अन्धविश्वासों, पाखंडों, आडम्बरों एवं रूढ़िवादिता का खण्डन किया तथा एक जीवन्त एवं प्रगतिशील समाज की रचना का सफल प्रयास किया। उनमें मौलिक चिन्तन भी था और अनुभूति की गहराई भी। उचित-अनुचित का निर्णायक विवेक भी था और अनुचित तथा अन्याय का विरोध करने की सक्रिय क्षमता भी। औरंगज़ेब को अपने पत्र में उन्होंने स्पष्ट लिखा था कि जब सभी साधन विफल हो जाएं तो अन्याय का विनाश करने के लिए तलवार धारण करना भी न्यायपूर्ण है। दुष्ट के संहार एवं सन्तों की रक्षार्थ ही उनका आगमन हुआ था :—

'हम इह काज जगत मो आए, धर्म हेत गुरदेव पठाए,
जहां तहां तुम धरम बिथारो, दुष्ट दोखियनि पकरि पछारो।'

ऐसा कवि-व्यक्तित्व भारत में तो क्या संसार के साहित्य में भी शायद ही मिल सके।

गुरु गोबिन्दसिंह के दरबारी कवियों ने यद्यपि गुरु जी से धन, वस्त्राभूषण, हाथी, घोड़े आदि मिलने का उल्लेख किया है, लेकिन सेनापति सरीखे वे कवि भी उनमें हैं, जो गुरु-भक्ति के लाभ के लिए ही उनका यशोगान करते हैं। उनके व्यक्तित्व में भी भक्त एवं 'खालसा' का व्यक्तित्व ही प्रकट हुआ है।

राजाश्रित कवियों में भाई संतोखसिंह का नाम विशेषरूप से उल्लेखनीय है। भाई सन्तोखसिंह कभी भी राजाश्रय प्राप्त करने के लिए नहीं भटके। वे स्वतन्त्र रूप से बूडिया (ज़िला अम्बाला) में काव्य-रचना करते थे, यद्यपि उस छोटे-से नगर में भी एक सरदार राजा था। यहां उन्होंने गुरु नानक के चरित्र पर आधारित एक धर्म प्रधान बृहद् काव्य की रचना की। बाद में कैथल-नरेश भाई उदयसिंह ने इन्हें ससम्मान अपने यहां बुलाया, लेकिन उनके आश्रय में भी इन्होंने धार्मिक साहित्य की ही रचना की। 'वाल्मीकि रामायण' का भाषा अनुवाद किया, 'जपुजी' का भाष्य लिखा, एवं 'गुरु प्रताप-सूरज' जैसे धर्म प्रधान महाकाव्य की रचना की।

भाई सन्तोखसिंह का आधार फलक (कन्वेस) अत्यन्त विस्तृत था। उन्होंने जीवन की सम्पूर्णता का चित्रण किया है। अपने युग के लगभग तीन सौ वर्षों के सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन का चित्रण एक युग-सृष्टा कलाकार की भांति

किया है। भारतीय-संस्कृति, धर्म और दर्शन का विशदता से प्रतिपादन किया तथा गुरु नानक से लेकर गुरु गोबिन्दसिंह तक के सभी सिक्ख-गुरुओं के सामाजिक एवं अध्यात्मपरक सिद्धांतों-आदर्शों का निष्ठापूर्वक निरूपण किया। उनकी अपनी जीवन-दृष्टि उदार, समन्वयवादी एवं मंगलमयी थी। वे निवृत्तिमूलक प्रवृत्ति-मार्ग के समर्थक थे। जीवन में त्याग, संयम, सन्तोष, दया, प्रेम, सेवा, परोपकार और सबसे ऊपर 'हरि-भक्ति' को महत्व देते थे। अन्याय, अधर्म और अत्याचार का सामना करने के लिए वे भी गुरु गोबिंदसिंह का आदर्श प्रस्तुत करते हैं।

उन्होंने अपने युग के, अपने समाज के तथा मानव-जीवन के मूलभूत प्रश्नों का स्पर्श ही नहीं किया, वरन् उन पर गम्भीरता से विचार भी किया। जीवन को स्वस्थ दिशा देने वाले तत्वों का प्रतिपादन किया। वस्तुतः, वे इतिहास-बोध से जुड़े हुए प्राणवान् सांस्कृतिक-चेतना, सशक्त राष्ट्रीय-भावना तथा जीवन्त-सामाजिकता से सम्पन्न एक युग-प्रवर्तक एवं लोकनायक-कवि हैं। इनके व्यक्तित्व में भी भक्ति और शक्ति का अद्भुत समन्वय है। सामान्य राजाश्रित रीतिकवि से इनका भाव-बोध सर्वथा भिन्न था।

इन कवियों के व्यक्तित्व एवं जीवन-दर्शन को निम्न पंक्तियों में व्यक्त किया जा सकता है—

'धन्य जिउ सोउ जग में मुख मैं हरिनाम चित्त में जुद्ध बिचारै।'

सन्तरेण और सन्त निश्चलदास तथा सुक्खासिंह जैसे कवियों का व्यक्तित्व भी भक्तिकाल के श्रेष्ठ सन्तों के अनुरूप आध्यात्मिकता, निस्पृहता, निर्वेद, भगवद्-भक्ति, सेवा, त्याग आदि की भावना से भरपूर है। वे जीवन और जगत के भौतिक आकर्षणों से विमुखता तथा सत्य, संयम, सन्तोष, त्याग एवं हरिभजन पर बल देने वाले सन्त कवि हैं।

इस प्रकार रीतिकवि के व्यक्तित्व, बोध एवं जीवन-दर्शन से इन कवियों के व्यक्तित्व, बोध एवं जीवन-दर्शन में मौलिक अन्तर है। वहां भोग पर बल दिया गया है, यहां त्याग पर। उनमें इहलौकिकता एवं भौतिक-लिप्सा है। इन कवियों का व्यक्तित्व परमार्थिकता एवं आध्यात्मिकता में सराबोर है। उनकी जीवन दृष्टि-बोध संकुचित, रूढ़िबद्ध तथा एकांगी है। इनकी जीवन-दृष्टि-बोध अत्यन्त व्यापक, प्रगतिशील, जीवंत एवं मंगलकारी है। 'रीतिकवि' नहीं सोचता कि समाज किधर जा रहा है और समाज के प्रति उसका क्या उत्तरदायित्व है, जबकि यहां का कवि समाज, राष्ट्र एवं मानव-मात्र के प्रति अपने उत्तरदायित्व को खूब समझता है। और इस दृष्टि से वह बहुत ही सजग एवं सक्रिय है। वह नई चुनौतियों का सामना करता है। नये प्रश्नों के प्रहारों को झेलता है। उसमें युग-धारा को बदल देने की शक्ति है, समाज में क्रांति पैदा कर देने की क्षमता है। उसमें मौलिक चिन्तन भी

है और चिन्तन को कार्य-रूप में परिणत करने का सामर्थ्य और साहस भी। वह हत्-चेतना नहीं, विलासी नहीं, रसिक नहीं, हारा हुआ नहीं, थका हुआ भी नहीं; उसमें विश्वास है, उत्साह है, स्फूर्ति है, उल्लास है, विवेक है बुद्धि है, प्रौढ़ तत्व चिन्तन है, अन्याय, अधर्म एवं रूढिवादिता आदि के विरुद्ध लड़ने का साहस है। अपनी संस्कृति के प्रति निष्ठा है, देश और धर्म से प्रेम है, गहरे आत्ममंथन तथा यथार्थ अनुभवों से प्राप्त जीवन-दृष्टि है। वह इतिहास-बोध से जुड़ा हुआ सृष्टा-कलाकार है। बिहारी, पद्माकर, देव, मतिराम आदि की गुरु गोबिन्दसिंह, भाई सन्तोखसिंह, सन्त निश्चलदास तथा सन्तरेण आदि से तुलना करने पर इन दोनों वर्गों के कवियों के व्यक्तित्व, बोध, उनकी जीवन-दृष्टि तथा उसके साथ ही इन के आधार-क्षेत्रों की सामाजिक एवं सांस्कृतिक-चेतना का अन्तर स्पष्ट हो सकता है।

समग्र रूप से देखने पर रीतिकाल के कवि का व्यक्तित्व भक्तिकाल के कवि से किसी भी भांति हीन या दुर्बल नहीं है और न ही उसकी जीवन दृष्टि अपेक्षाकृत सीमित, जड़ या अस्वस्थ है। उसका व्यक्तित्व भी उतना ही सशक्त है और उसकी जीवन-दृष्टि-बोध भी वैसी ही व्यापक, गतिशील, जीवन्त एवं मंगलकारी है। लेकिन, इसके लिए हमें बिहारी, पद्माकर, देव, मतिराम, घनानन्द आदि के स्थान पर पंजाब-हरियाणा के उपर्युक्त कवियों को आगे खड़ा करना होगा।

उपसंहार

रीतिकाल के साहित्य का अनुशीलन करने वाले विद्वानों की धारणा थी कि हिन्दी के रीति-काव्य का सृजन और पोषण जिन प्रांतों में हुआ है, वे हैं—अवध, बुंदेलखंड और राजस्थान। ये विद्वान यह भी समझते थे कि 'रीति-कविता राजाओं और रईसों के आश्रय में पली है, जिसके परिणाम-स्वरूप उसमें रीति-रचना, शृंगारिकता एवं अलंकरण की प्रवृत्तियों की ही प्रधानता है।'

'रीतिकाव्य' को लेकर जो भी चर्चा विद्वानों में अभी तक हुई है, वह इन्हीं दो बिन्दुओं के इर्द-गिर्द घूमती है। लेकिन, अब दो महत्त्वपूर्ण तथ्य सामने आए हैं—एक तो यह, कि इस युग में उपर्युक्त क्षेत्रों से बाहर हरियाणा, पंजाब, महाराष्ट्र, गुजरात आदि में भी हिन्दी का प्रचुर काव्य लिखा; गया; दूसरे, राज्याश्रय से बाहर धर्माश्रय में अथवा स्वतन्त्र रूप से भी बहुत-सा साहित्य रचा गया और इस तरह जो साहित्य लिखा गया है, वह परिमाण और महत्त्व की दृष्टि से, पहले से उपलब्ध साहित्य से किसी भी भांति हीन नहीं है, वरन कई दृष्टियों से उससे उत्कृष्ट है। विशेषरूप से गुरुमुखी-लिपि में ब्रजभाषा का जो साहित्य उपलब्ध हुआ है, वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

इस युग के सम्पूर्ण साहित्य का सर्वेक्षण करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि रीति, शृंगार एवं अलंकरण की तीन प्रवृत्तियां तो उसमें प्रमुख थी हीं, किन्तु वीरता और भक्ति की प्रवृत्तियां भी बहुत सशक्त एवं सबल थीं। वे इतनी गौण कदापि नहीं थीं, जितनी कि विद्वानों ने मानी हैं।

पिछले पृष्ठों के विवेचन से हम देखते हैं कि राजस्थान, पंजाब और हरियाणा में इस युग में जो वीरकाव्य लिखा गया, वह परिमाण, भाव-व्यंजना, कलात्मक-सौन्दर्य, काव्य-चेतना एवं सामाजिक-महत्त्व की दृष्टि से, इस युग के शृंगारिक काव्य एवं रीति-ग्रंथों से किसी भी प्रकार हीन नहीं है। उनमें वीर रस का इतना भव्य, विशद एवं ओजस्वी चित्रण हुआ है, वीर रस का ऐसा उदात्त रूप मिलता है, युग-जीवन की ऐसी यथार्थ अभिव्यक्ति हुई है, सांस्कृतिक एवं सामाजिक चेतना का ऐसा उज्ज्वल रूप मिलता है कि वह हिन्दी के और किसी भी युग

चे वीरकाव्यों में उपलब्ध नहीं होता। हिन्दी में इतने परिमाण में, इतने महत्त्वपूर्ण वीरकाव्यों की रचना न तो इससे पहले कभी हुई, न बाद में।

इसी प्रकार भक्ति भी इस युग की एक प्रमुख एवं स्वतन्त्र प्रवृत्ति है। इस काल में सैंकड़ों की संख्या में राम भक्त, कृष्ण भक्त, संत, सूफी एवं जैन-कवियों ने सहस्रों भक्ति-ग्रंथ लिखे। इनमें से कुछ पर 'रीति-काव्य' का प्रभाव भी परिलक्षित होता है। लेकिन, ऐसे ग्रंथों की भी कमी नहीं है, जिनमें उच्च, सात्विक एवं आवेगपूर्ण भक्ति-भावना के दर्शन होते हैं। इनमें तुलसी एवं कबीर के समकक्ष कुछ ऐसे प्रभावशाली लोकनायक-कवि भी हैं, जिन्होंने अपनी आध्यात्मिक एवं धार्मिक परम्पराओं, राष्ट्रीय एवं राजनैतिक चेतना का नये युग-बोध के संदर्भ में, लोकमंगलकारी दृष्टि से, विशदता से निरूपण किया है। उन्होंने समसामयिक जीवन को ही एक निर्णयात्मक दिशा नहीं दी, वरन, मानव मात्र के हित के लिए शाश्वत-सत्यों का उद्घाटन भी किया। अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध विरोध की भावना उत्पन्न की, सत्य और न्याय के लिए साहस पूर्वक लड़ना सिखाया, नैतिक मूल्यों की स्थापना करके तथा सात्विक धर्माचरण का महत्व बताकर उन्होंने राष्ट्रीय जीवन को प्रेरणा, प्रोत्साहन और गति दी। अन्य 'रीति-कवियों' की भांति न तो उनमें चिंतन की जड़ता थी, न वैभव एवं विलास की लिप्सा और न ही विवेक बुद्धि का ह्रास। उन्होंने बहुत ही जीवन्त और प्राणवान साहित्य लिखा। उसमें जीवन है, गति है, स्फूर्ति है, उल्लास है, उत्साह है, गंभीरता है, सात्विकता है और सार्थकता है।

पूर्ववर्त्ती विवेचन में दूसरी ध्यातव्य बात यह है कि सामान्य 'रीति-कवि' से उसका व्यक्तित्व भी एक भिन्न कोटि का है। राष्ट्र की जीवन्त-धारा से जुड़ा हुआ, उसे प्रेरणा और प्रोत्साहन देकर अग्रसर करने वाला, युग-सृष्टा कलाकार का व्यक्तित्व। न तो वह भोगी है, न रसिक, न विलासी। वह तो त्याग, परोपकार, संयम, संतोष एवं हरि-स्मरण को ही जीवन का आदर्श मानता है। वह समर्थ और शक्तिवान है। साहसी और शीलयुक्त है। वह धर्मयोद्धा भी है।

ऐसे प्राणवान और जीवन्त साहित्य के होते हुए साहित्य-सृजन की दृष्टि से इस युग को कैसे दीन-हीन कहा जा सकता है; और कैसे वीरता और भक्ति की प्रवृत्ति को गौण कहकर रीति, शृंगार और अलंकरण की प्रवृत्तियों को ही प्रमुख माना जा सकता है।

'रीति-रचना' की परिपाटी इस युग में व्यापक अवश्य है, किन्तु वह कितनी अशक्त और प्राणहीन है, इस पर अधिक कुछ कहने की आवश्यकता नहीं। 'रीति' की प्रवृत्ति तो भक्ति-काल में भी थी, किन्तु बहुत क्षीण। इस युग में राजसभाओं के प्रश्रय से वह भी बल पकड़ गई। शृंगारिकता का भी एक तरह के

साहित्य में प्रभुत्व है; लेकिन इस युग के समस्त साहित्य की स्नायुओं का रक्त-प्रवाह उसे नहीं कहा जा सकता, क्योंकि इस युग के साहित्य में एक वर्ग के कवियों में भोग और विलास के प्रति जहां लालसा है, वहां साथ ही एक बहुत बड़े वर्ग के कवियों में विलास एवं भोग के प्रति तीव्र वितृष्णा एवं विरक्ति भी देखी जा सकती है।

अलंकरण तो काव्य का एक आवश्यक 'तत्त्व' है। सभी कालों में कवियों ने अलंकारों का यथा-शक्ति प्रयोग किया है। भक्ति काल के समस्त काव्य में अलंकारों का सौन्दर्य छलकता हुआ देखा जा सकता है। इस काल में आकर कुछ 'रीति-कवियों' ने राज-दरबारों के प्रभाव-स्वरूप इनके चमत्कारपूर्ण प्रयोग में भी रुचि दिखाई, लेकिन ऐसा काव्य भी प्रचुर मात्रा में लिखा गया, जिस में चमत्कार-प्रदर्शन का यह मोह नहीं है। सहज और स्वाभाविक काव्य-शैली को ही अपनाया गया है।

अस्तु, रीति, शृंगार और अलंकरण की प्रवृत्तियां उन कवियों में ही प्रमुख रहीं, जिनकी कविता राजाओं और रईसों के आश्रय में पली। लेकिन ऐसी भी प्रभूत काव्य-रचना इस युग में हुई जो राजाओं, रईसों के विलासपूर्ण वैभव सम्पन्न प्रभाव से मुक्त रही और उसमें वीरता एवं भक्ति की प्रवृत्तियां अत्यन्त प्रबल हैं। वस्तुतः, भक्ति भी इस युग की एक प्रमुख और महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति है। दूसरा स्थान वीरता को देना उचित है।

इस युग में देव, बिहारी, पद्माकर, मतिराम, घनानन्द, बोधा, ठाकुर आदि ५-७ 'कवि' ही ऐसे हैं, जिनके कन्धों पर 'रीति-काव्य' का भवन खड़ा हुआ है, लेकिन इन कवियों के कन्धे गुरु गोबिंदसिंह, भाई सन्तोखसिंह, सन्तरेण, गुलाबसिंह, सेनापति, सुक्खासिंह, निश्चलदास आदि के सामने कितने अशक्त एव निर्बल हैं, यह दोहराने की आवश्यकता नहीं है। वस्तुतः, अब इस युग के श्रेष्ठ कवियों में इन्हीं कवियों की गणना पहले होनी चाहिए, उन्हें बाद में स्थान दिया जा सकता है और ऐसा करने से ग्रन्थों की संख्या, महत्वपूर्ण रचनाओं, श्रेष्ठ कवियों आदि के आधार पर इस युग का जो चित्र सामने आता है, उसमें प्रमुख-प्रवृत्तियों के रूप में क्रमशः भक्ति, वीरता, रीति, शृंगार, अलंकार के रंग भरने होंगे और तब इसे न 'रीतिकाल' कहा जा सकेगा, न 'शृंगारकाल' और न ही 'अलंकारकाल'। यह भक्तिकाल का ही बढ़ाव है, जिसमें भक्ति की धारा यथावत प्रबल रूप में आगे बढ़ती रही। उसका क्षेत्र भक्तिकाल में द्रविड से मध्यदेश बना था, इस काल में वह मध्यदेश के साथ ही पंजाब और हरियाणा में भी व्याप्त हो गई। यह धारा अन्यत्र क्षीण थी, यहां प्रबल। इस काल में आकर वीरता की प्रवृत्ति भी प्रबल हो गई थी। विशेष रूप से राजस्थान, पंजाब और हरियाणा में, क्योंकि यहां की परिस्थितियों की वह मांग थी।

अन्त में मैं यही कहूंगा कि गुरु गोबिंदसिंह, सन्तोखसिंह, सन्तरेण एवं सन्त-निश्चलदास—ये चार महान कवि इस युग के चार आधार स्तम्भ हैं और 'दशम-ग्रन्थ', 'गुरु-प्रताप-सूरज, 'गुरु-नानक-विजय' तथा 'विचार-सागर' आदि महान् काव्य-ग्रन्थ इस युग के साहित्य की कीर्ति-पताकाएं हैं।

इस बृहद् चित्र को सामने रखकर इस काल को क्या नाम दिया जाए, इसका निर्णय साहित्य के ज्योतिषी ही कर सकते हैं।

परिशिष्ट

(क) आध्यात्मिक एवं भक्ति भावना की अभिव्यञ्जना

गुरु गोबिन्दसिंह—दशमग्रंथ में संकलित रचनाओं से :—

छपै—चक्र चिह्न अरु बरन जात अरु पात नहिन जिह ।
रूप रंग अरु रेख भेख कोऊ कहि न सकति किह ।
अचल मूरति अनभव प्रकाश अमितोज कहिज्जै ।
कोटि इंद्र इंद्राणि साहि साहाणि गणिज्जै ।
त्रिभवन महीप सुर नर असुर नेत-नेत बन त्रिण कहत ।
तव सरब नाम कत्थै कवन करम नाम बरणत सुमत ।१।

भुजंगप्रभात छन्द—

नमसत्वं अकाले । नमसत्वं त्रिपाले ।
नमसत्वं अरूपे । नमसत्वं अनूपे ।२।
नमसतं अभेखे । नमसतं अलेखे ।
नमसतं अकाए । नमसतं अजाए ।३।
नमसतं अकरमं । नमसतं अधरमं ।
नमसतं अनामं । नमसतं अधामं ।५।
नमसतं अगंजे । नमसतं अभंजे ।
नमसतं उदारे । नमसतं अपारे ।८।
नमसतं सु एकै । नमसतं अनेकै ।
नमसतं अभूते । नमसतं अजूपे ।९।
नमसतं निकरमे । नमसतं निभरमे ।
नमसतं निदेसे । नमसतं निभेसे ।१०।

(जापु)

चउपई —

प्रणवो आदि एकंकारा । जल थल महीअल कीओ पसारा ।
आदि पुरख अबगत अबनासी । लोक चत्र दस जोति प्रकासी ।१।
हसत कीट के बीच समाना । राव रंक जिह इकसर जाना ।
अद्वै अलख पुरख अबिनासी । सभ घट-घट के अतंरजामी ।२।
अलख रूप अच्छै अनभेखा । राग रंग जिह रूप न रेखा ।
बरन चिह्न सभहूं ते निआरा । आद पुरख अद्वै अबिकारा ।३।
बरन चिह्न जिह जात न पाता । सत्र मित्र जिह तात न माता ।
सभ ते दूरि सभन ते नेरा । जल थल महीअल जाहि बसेरा ।४।
अनहद रूप अनाहद बानी । चरन सरन जिह बसत भवानी ।
ब्रहमा बिसन अंतु नही पाइओ । नेत नेत मुख चार बताइओ ।५।
कोटि इंद्र उपइंद्र बनाए । ब्रहमा रुद्र उपाइ खपाए ।
लोक चत्र दस खेल रचाइओ । बहुर आप ही बीच मिलाइओ ।६।
काल रहत अनकाल सरूपा । अलख पुरख अबगत अवधूता ।
जात पात जिह चिह्न न बरना । अबगत देव अछै अनभरमा ।९।
सभ को काल सभन को करता । रोग सोग दोखन को हरता ।
एक चित्र जिह इक छिन धिआइओ । काल फास के बीच न आइओ ।१०।

(अकाल उस्तुति)

दुसट गंजन सत्र भंजन परमपुरख प्रमाथ ।
दुसट हरता स्रिसट करता जगत मैं जिह गाथ ।
भत भव्व भविक्ख भवान प्रमान देव अगंज ।
आदि अंत अनादि स्रीपति परमपुरख अभंज ।१२।१९२।
दुसट हरना स्रिसट करना द्याल लाल गोबिंद ।
मित्र पालक सत्र घालक दीन दयाल मुकंद ।
अघो डंडण दुसट खंडण कालहूं के काल ।
दुसट हरणं पुसट करणं सरब के प्रतिपाल ।१४।१९४।
सरब सिम्रितन सरब सासत्रन संरब बेद बिचार ।
दुसट हरता बिस्व भरता आदि रूप अपार ।

दुसट दंडण पुसट खंडण आदि देव अखंड ।
भम अकाश जले थले महि जपत जाप अमंड ।
आदि अंति न मध जाको भत भब भवान ।
सत दुआपर त्रितीआ कलजुग चत्रकाल प्रधान ।
धिआइ धिआइ थके महामुन गाइ गंध्रब अपार ।
हार हार थके सभै नहीं पाईए तिह पार ।१९।१९९
(अकाल उस्तुति)

सोस पटकत जाके कान में खजूरा धसै,
मूंड छटकत मित्र पुत्रहू के सोक सौ ।
आक को चरय्या फल-फूल को भछय्या,
सदा वन को भ्रमय्या अउर दूसरो न बोक सौ ।।
कहा भयो भेड जौ घसत सीस बिछन सौ,
माटी को भछय्या बोल पूछ लीजै जोक सौ ।
कामना अधीन काम क्रोध मै प्रबीन एक,
भावना बिहीन कैसे भेटै परलोक सौ ।।१०।८०

नाचिओ ई करत मोर दादर करत सोर,
सदा घनघोर घन करिओ ई करत है ।
एक पाइ ठाढ़े सदा बन मै रहत त्रिछ,
फूक फूक पावन भूम स्रावग धरत है ।।
पाहन अनेक जुग एक ठउर बासु करै,
काग अउर चीर देस देस बिचरत है ।
गिआन के बिहीन महा दान मै न हूजै लीन,
भावना यकीन दीन कैसे कै तरत है ।।११।८१

जैसे एक स्वांगी कहूं जोगीआ बैरागी बनै,
कबहूं सन्निआस भेस बनकै दिखावई ।
कहूँ पउनहारी कहूं बैठे लाइ तारी,
कहूं लोभ की खुमारी मो अनेक गुन गावई ।।

कहूं ब्रह्मचारी कहूं हाथ पै लगावै वारी,
कहूं डंडधारी हुइकै लोगन भ्रमावई ।
कामना अधीन परिओ नाचत है नाचन सो,
गिआन के बिहीन कैसे ब्रह्म लोक पावई ।।१२।८२

पंच बार गीदर पुकारे परे सीत काल,
कुंचर औ गदहा अनेक दा पुकार ही ।
कहा भयो जो पै कलवत्र लीओ कांसी बीच,
चीर चीर चोरटा कुठारन सो मारही ।।
कहा भइओ फासी डार बूडिओ जड़ गंगधार,
डार डार फास ठग मार मार डारही ।
डूबे नरक धार मूड़ गिआन के बिना बिचार
भावना बिहीन कैसे गिआन को विचार रही ।।१३।८३

ताप के सहे ते जो पै पाईऐ अताप नाथ,
तापना अनेक तन घाइल सहत है ।
जाप के कीए ते जो पै पायत अजाप,
पूतना सदीव तुही तुही उचरत है ।।
नभ के उड़े ते जौ पै नाराइन पाईयत,
अनल अकास पंछी डोलबो करत है ।
आग मै जरे ते गत रांड की परत कर,
पताल के बासी किउ भुजंग न तरत है ।।१४।८४।।

कोऊं भइओ मुंडीआ सन्निआसी कोऊ जोगी भइओ,
कोऊ ब्रह्मचारी कोऊ जती अनमानबो ।
हिंदू तुरक कोऊ राफजी ईमाम साफी,
मानस की जात सबै एकै पहचानबो ।।
करता करीम सोई राजक रहीम ओई,
दूसरो न भेद कोई भूल भ्रम मानबो ।
एक ही की सेव सभ ही को गुरदेव,
एक एक ही सरूप सबै एकै जोत जानबो ।।१५।८५।।

देहुरा मसीत सोई पूजा औ निवाज ओई,
मानस सबै एक पै अनेक को भ्रमाउ है ।
देवता अदेव जच्छ गंध्रब तुरक हिंदू,
निआरे निआरे देसन के भेस को प्रभाउ है ।।
एकै नैन एकै कान एकै देह एकै बान,
खाक बाद आतम औ आब को रलाउ है ।
अलह अभैख सोई पुरान औ कुरान ओई,
एक ही सरूप सबै एक हीं बनाउ है ।।१६।८६

जैसे एक आग ते कनूका कोट आग उठे,
निआरे निआरे हुइ कै फेरि आग मै मिलाहगे ।
जैसे एक धूर ते अनेक धूर पूरत है,
धूल के कनूका फेर धूर ही समाहगे ।।
जैसे एर नद ते तरंग कोट उपजत है,
पान के तरंग सबै पान ही कहाहगे ।
तैसे बिस्वरूप ते अभूत भूत प्रगट होइ,
ताही ते उपज सबै ताही मै समाहगे ।।१७।८७
(अकाल उस्तुति)

(५)

ध्यान लगाइ ठगिओ सब लोगन सीस जटा नख हाथ बढ़ाए ।
लाइ बिभूत फिर्यो मुख उपरि देव अदेव सबै डहकाए ।।
लोभ के लागै फिर्यो घर ही घर जोग के न्यास सबै बिसराए ।
लाज गई कछु काज सर्यो नहि प्रेम विना प्रभ पान न आए ।।१७

काहे कउ डिंभ करै मन मूरख डिंभ करै अपनी पति खवैहै ।
काहे कउ लोग ठगे ठग लोगनि लोग गयो पर लोग गवैहै ।।
दीन दयाल की ठौर जहा तिहि ठौर विखै तुहि ठौर न ऐहै ।
चेत रे चेत अचेत यहां जड भेख के कीने अलेख न पैहै ।।१८

काहे कउ पूजत पाहन कउ कछु पाहन मै परमेसर नाही ।
ताही को पूज प्रभू करि कै जिह पूज़त ही अघ ओघ मिटाही ।।
आधि बिआधि के बंधन जेतक नाम के लेत सबै छुटि जाही ।
ताहि को ध्यानु प्रमान सदा इन फोकट धरम करे फलु नाही ।।१९

फोकट धरम भयो फल हीन जु पूज मिला जुगि कोट गवाई ।
सिद्ध कहा सिल के परसे बल ब्रिद्ध घटी नव निद्ध न पाई ।।
आजु ही आजु समो जु बित्यो नहि काजि सर्‌यो कछु लाजि न आई ।
स्री भगवंत भज्यो न अरे जड़ ऐसे ही ऐस सु बैस गवाई ।।२०

काल गयो इन कामन सिउ जड़ काल क्रिपाल हीऐ न चितार्‌यो ।
लाज को छाड़ि न्रिलाज अरे तजि काजि अकाज के काज सवार्‌यो ।।
बाज बने गजराज बड़े खर को चड़िबो चित बीच बिचार्‌यो ।
स्री भगवंत भज्यो न अरे जड़ लाज ही लाज तै काजु बिगार्‌यो ।।२१
(श्री मुखवाक सवैये)

(६)

रामकली पातसाही ।। १०

रे मन ऐसो करि सन्निआसा ।
बन से सदन सबै करि समझहु मनही माहि उदासा ।।१
रहाउ ।।

जत की जटा संग को मज्जनु नेम के नखन बढ़ाओ ।
गिआन गुरू आतम उपदेसहु नाम बिभूत लगाओ ।।१।।

अलप अहार सुलपसी निंद्रा दया छिमा तन प्रीति ।
सील संतोख सदा निरबाहिबो ह्वै बै त्रिगुण अतीति ।।२।।

काम क्रोध हंकार लोभ हठ मोह न मन सो ल्यावै ।
तबही आतम तत को दरसे परम पुरख कह पावै ।।३।।

प्रभ जू तोकह लाज हमारी ।
नीलकंठ नर हरि नाराइण नील बसन बनवारी ।।१। रहाउ ।।

परम पुरख परमेसर सुआमी पावन पउन अहारी ।
माधव महा जोति मध मरदन मान मुकंद मुरारी ।।१ ।।

निरबिकार निरजुर-निंद्रा बिनु निर बिख नरक निवारी ।
क्रिपासिंध काल त्रै दरसी कुक्रित प्रनासन कारी ।।२।।

धनरपान ध्रित मान धराधर अनि बिकार असिधारी ।
हौ मति मंद चरन सरनागति कर-गहि लेहु उबारी ।।३।।

(शब्द हजारे)

सेनापति—गुरु शोभा

नेम धरम पूजा सकल एक नाम गोबिंद ।
एक बार मुख ते कहो होति अनेक अनन्द ।८।१२४।

मान वचन सनमुख भए जिन अंतरि परतीत ।
एको नाम निधान जपि लीओ जनम जिन जीति ।१२।१२८

गुरु गोविंद गोविंद गुरु करनहार करतार ।
जगत उधारन आइओ जानहू सब संसार ।१३।१२९

जो करता सब स्रिसटि को ताहि सदा मनि जाप ।
दुरमत मिटै हउमै छुटै संत जना परताप ।५१।१६७

मरि मरि जनमहि अनक बार चउरासी बिउहार ।
बिनु गुरु ठउर न पावई देखउ रिदै बिचार ।५३।१६९

अंचर गहि सतसंगि को तजि परपंच विकार ।
दिवस रैनि वीचारिए मन ते दुविधा टार ।५५।१७१

मोहि आसरो ताहि को ऐसो समरथ सोइ ।
सरब धार समरथ प्रभ ता बिनु अवर न कोइ ।६३।१७९

तू एको नाम अनेक अंत न पाईए।
कर संतन सौ प्रीत भरम चुकाईए।
ताको नाम विसार अउर कित जाईए।
वहु बिअंत करितार रैन दिन गाईए।
जी! खालस की अरदास चरनी लाईए।६२।१७८

तू सच्चा करतार है तेरा अंत न पारा।
प्रितपालक संसार को सचु सिरजन हारा।
जिन तू सिमरिओ अंत बार तिस पार उतारा।
रच रचना कल धारीआ बहु विधि विस्तारा।
जी! लीला लखी न जाइ किछु तू करने हारा। ६८।१८४

कीओ है प्रकास जोति चमकत है चहू ओर,
दीसै रव चंद हू मै तेरी सब जोति है।
जेते है जीव जन करनहार तुही है,
पूरि रहिओ सरब ही मैं आदि ओतपोत है।
सेवा जाकी अनूप सुन्दर सरूप रूप,
चरन कंवल निरखे ते जन की गति होत है।
विनसे है सबै पाप निस दिन प्रभ एक,
जाय चहू ओर आप आप आप ही दिसोत है।९।३८७

जो जन हरि प्रभ छोडि कै करत अवर की सेव।
सो मूरख अगिआनि है पावत रंच न भेव।८।८४६

हैं सुवास म्रिग पास ही नहि जानत अगिआन।
गुर बिन वास न पावई ढूंढत है उदिआन।१०।८४८

दुख विडारन तारन तरन कारन करन मुरार।
अंग संगि सब कै रहै दयावंत करतार।१२।८५०

मोहि आसरो ताहि कौ ऐसे समरथ सोइ।
सरवधार समरथ प्रभ ता बिन अवर न कोइ।१४।८५२

चउरासी मै परत है बिना भगत नर सोइ।
निस दिन एक अराधीए मन की दुविधा खोइ।१६।८५४

करि निहचै इक नाम सो अवर न मन मै आन।
लाग रहै धुनि प्रेम की चरन कवल सो धिआन।१८।८५६

सुख उपजति है नाम ते सिमरन करि मन मीत।
तजि बिकार करतार जपि मन अंतरि धर प्रीत।२२।८६०

सो कर रीत प्रभु संग प्रीत अनीत तजै दुख आवै न नेरे।
होत प्रगास निवास सदा सुख ऐसे हैं नामु जपु मन मेरे।
ताहि बिना सुख नाहि कहू समझो चित मै मन मूड सवेरे।
एक ही नाम बिना तन धार विकार सबै कछु काजि न तेरे।२२।८६१

छाड़ि विकार अधार यही करि एक ही नाम सदा कहीए।
रहीए संत संगति संग मना उपजै सुख गिआन सदा गहीए।
ममता तजि मोह विमोह भए नर नाम की सेव तिनो लहीए।
कहीए अब एक विचार मना जमदूत तो त्रास कहा सहीए।२५।८६३

जानत है सब ही जग रीत सु प्रीत बिना कहू पार न पय्यै।
रे मन नाम बिना गुर के हित कैसे कै जोती जोत मिलय्यै।
जो सिमरे सोई पार परै नर ऐसे विचार सदा गुन गय्यै।
नाम अधार अपार कथा सुनि छाडि विकार सु तहि गुन गय्यै।४५।८८२

हरि को नाम बिसारि कै परत मूड मझदार।
माया मै भूलो फिरै करत नाहि बीचार।५२।८८९

अंम्रित पी कर त्रिपतिओ तहा करि संतन सो प्रीत।
दुरलभ मानस जनम है लीओ छिनक मै जीत।७२।९०९

सुक्खासिंह—गुरु विलास

आदि पुरख बिनवौ करतारा। जास कीन यहि सकल पसारा।
एक अनेक सकल घट वासी। अचुत्त अलख पुरख अविनाशी।२

भूम गगन जल तत्त प्रकाशै। सगल स्रिसट महि कीन निवासै।
लोगन को इह विधि भरमै कै। निरखतु आप निआरो ह्वै कै।३।

दानव देव फनिंद बनाई। किंनर जच्छ सबे अधिकाई।
बड़े-बड़े मोनी व्रतधारी। कई कलप जिन जपत गुजारी।४।

लोभ सतै तप बल अधिकाई। सहस बदन सहसानन गाई।
चतरानन मुख चार सु करे। पूत पांच वट तिह सिस धरे।५।

× × ×

तद्दप कछु अंत नहीं आवै। चार वेद यो भेद बताव।६।

गुर मुख ह्वै धिआवै जो कोई। श्री हरिजू करे पावै सोई।
धन्न धन्न सतिगुरु करतारा। जासु कियो यह पंथ सुधारा।७।

× × ×

दोहरा

अचुत्त आदि अनंत प्रभ कहत अछेद अभेद।
जाको पार न पावई शिव बिरंच अर बेद।८१।

चौपई

सो निज आदि अगाध कहायो। जिन इह चौदह लोक बनायो।
रूप रेख जाकर कछू नाहीं। एक अनेक सगल घट माहीं।८२।

देव दैत जिह जच्छ बनाए। किंनर नाग मनुच्छ उपाए।
हिंदवाना तुरकाना जानो। इह सभ साज जुदा पहचानो।८३।

जब जब होत अरिशट अपारा। तब तब देह धरत अवतारा।
दुशट अरिशट सु प्रलै कराई। पुन भगतन उर रहत समाई।८४।

× × ×

सेस सुरेस दिनेस प्रमेस्वर खोजत हैं जिह को अब तोरी।
सिद्ध मुनी मुन नारद से जिह जावत है कर कशट करोरी।

किनर जच्छ भुजंग धराधर सेवत हैं जिह को निस भोरी।
सो करुणानिध रूप गुर खालसा अग्र खरे कर जोरी।९२।

× × ×

छीर समुंद किधों गुर पूरन लाल रतन धरे जिह माही।
अग्रित धेनु ससी सु धनंतर कौन गनै गनती कछु नाही।

रिद्ध सु सिद्ध पदारथ कोटक बीच बसै जिह की परछाही।
सो गुर पूरन अम्रित माँगत कौतक संत लख्यौ यहि आही। १२-९९

× × ×

भाई संतोखसिंह—'गुरु प्रताप सूरज' एवं 'नानक प्रकाश'

दोहरा

तीनो काल सु अचल रहि अलंब सकल जग जालि।
जाल काल लखि मुचति जिसि करता पुरुख अकाल।१।

छोनी, सूरज, अगनि, जम, वायु त्रास जिसि पाइ।
निज सुभाव महिं थिति रहति, अस ब्रह्म रिद बिदताइ।२।

मरम न जान्यो जाइ जिसि, भरम मिटे मिलि जाइ।
करम धरम अरु भगति फल, अस अभेद को पाइ।३।

भान होति जग जास ते रजू भुजंग समान।
मान हानि करि जानि तिह तम अनादि कहु भानु।४।

सति चेतन आनंद युत नाम रूप जग पंच।
संत दुहनि उर परहरै तिन तीनहु को संच।५।

× × ×

माया से सवल जु भयो जिति किति व्यापि समान।
सार असार संसार करि सचिदानंद महान।
जिसि बिन जाने ब्रिद दुख जाने अनंद विलंद।
पार ब्रह्म परमातमा बंदौ जुग कर बंदि।

× × ×

सवैया

श्री पुरशोतम पूरन है, परमात्म पालक, लेप न माया।
श्री परमेशुर माधव, पावन पोखक, प्रेरक पार न पाया।

जै करिता जगदीश, जजे जग जीवन जोनि बिना, जस छाया।
श्रीपति, जोति सरूप अनूपम भूपन भूप नमो हरिराया।

× × ×

दोहरा

सति चित अनंद प्रमातमा सभि जीवन को जीव।
सदा शांति, नभ समख्यो, सरब शकति को सीव।

(रा० १०: १: १)

सति चित अनंद समान इक निरगुन सरगुन माहि।
ग्यानादिक गुन ईश के जीव बिखै इह नाहिं।

× × ×

दीननि दयाल अनंदघन जो सभि मैं लय लीनि।
लीनी नाम जन जाहि ने तिन को कैवल दीनि।

पार ब्रह्म पूरन करतारा। परमेशुर जगतेश उदारा।
दीन बंधु प्रिय सिक्खन केरा। प्रभु हरि व्यापक जहिं कहिं हेरा।३२।

अच्युत महापुरुख गुण खानी। परम क्रिपाल, परम सुखदानी।
निरभउ, निरंकार, निरकाला। निरगुन सदगुन रूप विसाला।३३।

प्रभु संभू निरभउ सभि स्वामी। मधुसूदन नरपतिजगदाता।
दुशटन गंजन जन मन रंजन। करता पुरुख अनंत, अनजन।३४।

सत्ति रूप जोतनि की जोति। जिह सत्ता से जगत उदोति।
परमातम, नरहरि अविनाशी। रूप न रंग न घटि घटि वासी।३५।

× × ×

देहनि केर सनेहु अछेहा। मिथ्या अहै न राखहु एहा -
आदि अंत महिं जो नहि पय्यति। मध्य सत्य को कैसे लहियति।१८।

जो उपजहि सो बिनसनि हारो। लखि तांको मिथ्या निरवारो।
इस महि संकट अनिक प्रकार। वाशवंत द्रिशमान संसार।१९।

जिस को इहु अवलंब नित भासे। सो बिन आदि न अंत प्रकासे।
काल सपरशहि जाहिं न क्यों हूं। आदि अंत मधि इकरस त्यों हूं।

× × ×

बिशियन महिं आनन्द अग्यानी। निजानन्द प्रापति है ग्यानी।
सभि को मूल देहि धरि हंता। पुनहि पदारथ ममतावंता।३६।
ऐ सभि माया केरि विकार। जो भासति है नानाकार।
नहीं वासतव जान्यो जाइ। इह माया को रूप कहाई।

× × ×

सीर ना सुसंग मैं कुसंग मैं सन्तोखसिंह,
रम्यो नित पापनि सों मिल्यो कबि धीर ना।
धीर न धरति काम लपट कठोर कूर,
वोयों मैं विकरान मै भयो मन तीर ना।
तीर ना पछान्यो तुमैं, दूर करि जान्यो प्रभू,
आपने उधार की विचारि ततबीर ना।
बीर ना भगत, भेख धारी हित नारी,
जिम राखी पैज तैसे मेरी हेरो तकसीर ना।

(गुरु प्रताप सूरज)

कवित्त

तोसो नहीं दाता कोऊ, मोसो न भिखारी दीन,
तोसो न दयालु, दुखी मोसो न अलाईए।
मोसो नहीं क्रितघन, तोसो उपकारी नांहि,
मोसो न अनाथ नाथ तोसो न बताईए।
औगुनी न मोसो कोऊ, गुनवान तोसो नहीं,
जप तप व्रत मो मैं एक नहीं पाईए।
कवि आयो है शरन, गहे धाइ कै चरन,
गुरू तारन तरन, निज हाथ दै बचाईए।१२०

(नानक प्रकाश)

× × ×

चौपई

सत भूपति के मन लिवलागी। सिमरहि निस बासुर बड़भागी।
उठति बैठति गवनति नामू। कहि स्री नानक नित सुख धामू।६३

मोर समान भयो मन मोरा । कबहि मिलहिं ह्वै कै घन घोरा ।
चित चात्रिक को प्यास पुकारति । चाहति स्वांति दरस हरि आरति ।६४।

लोचन भए चकोर बिचारे । चन्द बदन कबि आन दिखारे ।
बिरद सुन्यो मैं दीन दयाला । यांते आसा करों बिसाला ।६५।

अस प्रकार भूपति अभिलाखा । दिन प्रति बधति विटप जिउ साखा ।
रैन बिखै निंद्रा जिन त्यागी । दिन मैं भूख पयासा भागी ।६६।

(ना० प्र० पू० अ० ४४)

× × ×

चौपई

अस प्रकार की रचना करि कै । गमन्यो भूप भाउ उर धरि कै ।४।

जब आबा उपवन के माँही । श्री नानक तहिं देखे नांही ।
परखन भाउ भूप, गतिदाना । भए काल तिह अंतर ध्याना ।५।

बिना बिलोके बिहबल राऊ । धरनि गिर्‌यो तन सुध नहिं काऊ ।
लगी म्रित्तका अंगन मांही । लीन उचाइ सेवकन तांही ।६।

पौंछ अंग करि पौन झुलाई । चेतनता भूपति तन आई ।
बोल्यो वाणी होइ सशोका । कितगे श्री नानक सुख ओका ? ७।

जिनके दरशन तीनहुं तापा । तनक बिलोकति होवति खापा ।
कितक दिवस की लगी उडीका । अब प्रापत भा सुख मम जी का ।८।

मंद भाग भा मोर महाना । भए सपद ही अन्तर ध्याना ।
अस कहिं कानन की दिश दौरा । प्रेम प्रबल ने कीनो बउरा ।९।

आरत होइ पुकारति भारी । प्राननाथ ! मिलिये इक बारी ।
दौरि दौरि सुध हेत मुकंदा । बूझति बिटप बिहंगन ब्रिंदा ।१०।

गिरवर सरवर ह्वै करि तीरा । तुम देख्यो कित गुनी गहीरा ।
बिकुल बचन बोलति बन मांहीं । किह असथान बिलोके नांही ।११।

स्वेद अंग पुन लोचन नीरा ! सरब भीगगे चीर सरीरा ।
गिरयो धरनि पर ह्वै मुरछाई । तब प्रगटे श्री गुर जग साईं ।१२।

(ना० प्र० पू० अ० ४२)

× × ×

भो विप्र ! तिय मैं को वयु नीकी। जिस अवलोकि प्रीति ह्वै जी की
जे लोचन कहि कमल समाना। गीड बहिति तिह पिखति गिलाना।
फोरि बिलोकहि जे तिन मांही। मिजम नीर बिन और सु मांही।३३।

अपर अंग तिन रीति सुनीजै। चन्द सरस को बदन कहीजै।
चरबी रकत लपेट्यो चामा। गौर रंग पिखियति अभिरामा।३४।

इस वसतुन बिन होइ न आना। जिनहिं बिलोके आइ गिलाना।
पुन जि दांत कहिं कली समाने। मास बिना लिहु हाड छिपाने।३५।

मुख ते टूट जाहिं जे सोऊ। चहिति हाथ न छवाइयो कोऊ।
इस प्रकार देहि लखि सारी। हाड मांस है रकत मझारी।३६।

विशटा, मूत्र, युकति दुरगंधे। किह को पिखिलुभाई मति अंधे।
मुख मै थूक सीढ बहु नासा। अपर चरम बाल दै रासा।३७।

हे न्रिप ! इस प्रकार उर धारहु। वसतु कौन सी भली विचारहु।
महां दुरगंध मंदनी सोऊ। अहै नारि की प्रीतहि जोऊ।३८।

(उ० अ० १३)

संत रेण

नामी नाम भिन्न न होइ। एक रूप ही जानो दोइ।।
नाम ब्रह्म दुइ जान अनूप। रूप रेख ते रहित अनूप।।
सत्ता मात्र ताहि सु जान। नामी नाम सु दोइ महान।।
नामी नाम दोइ अविनाशी। जाहि रूप सु होवे नासी।।

× × ×

नामु सप्रेम हमारा सिमरे जोइ रे।
तिन कलेस गण राकस मारे मोह रे।
नाम प्रताप कलेस सु सहजे भागिआ।
हो तिनको करना जतन नहिं कछु लागिआ।
नाम कोटि सतिसंग सू मूढ़ि सु धारिआ।
जिन को ग्यान न ध्यान सु कछु न जानिये।
हो नाम सु मूढ़ि सुधारै करे ग्यानिये।

× × ×

परम निरंजन निरगुन जोइ। मन वाणी ते परे सु लोई।
भगति बस सरगुनि सो भयो। अहि उतार तहि लै लयो।३९।
रूप रस गुनि परम उदार। लीला खातर लयो उतार।।
(म०खं० १४/४०)

× × ×

जिम जलु ते बहु उठई लहिरां अउर तरंग।
पुनि जलु मैं ह्वै लीन सभि जलु एक सदा उमंग।१८।
ब्रह्मा बिसन महेस उतार सु जेतिओ।
लहिरां अउर तरंग सु जानो तेतिओ।
उतिपति अरु पुनि लीन होइ सो जानिए।
हो जलु असथानी पारब्रह्म सो मानिए।
(गुरु नानक विजय)

जितने मन जीव अहै जग मै,
इक नाहिं सुखी सु दुखी मन सारे।
दुख मै जनमे दुख मांहि मरै,
मध मै दुख पाइ सु जीव अपारे।
नहि जाइ कही इक संतन की,
पर और दुखी सु सबै नर नारे।
इम संतहि रेण कहै मन को,
मन राम बिना दुख कौन निवारे।३०।(मन प्रबोध)

× × ×

लख नाग सु आग समान तिनै,
भुल कै तिन संग न बात उचारे।
सब ग्यान सु ध्यान भुलाइ दए,
निज नैनन कोर दिखाइ सु नारे।
निज रूप दिखाइ हरै मन को,
चित के टुकरे टुकरे करि डारे।
इम संतहि रेण कहै अबला,
बिन ही बरछी तलवार सु मारे।५२। वही

× × ×

ललना तन सुंदर रूप जिते,
सु तिते सम सैलिन जान उदारे।
जिम दूरहु सैल लगै रमणीक,
भरे बिच कंटकि पाहिन सारे।
तिम दूरहु ते ललना रमणीक,
सु माहि भरा मल मास बिकारे।
इम संतहि रेण कहै मन को,
मन देख विचार भली परकारे।५३। वही

× × ×

तव खातर संतन संग कर्‌यो,
दिन रैण जयो सु करी तिन घाले।
तव खातर मैं गज़ वाज चढ्यो,
तव खातर मैं बहु सेवक पाले।
तव खातर मैं सुख भोग करै,
पहिरे मन मै बहु साल दुसाले।
इम संतहि रेण कहै मन को,
पर तै मन ना रघुवीर सम्हाले।६७।

× × ×

पति सुंदर है तब नार नहीं,
जब नार सु सुंदर है विभचारण।
धरि नार अहे तब पूत नहीं,
जब पूत अहे तब आहि सधारण।
नर देहि अहे तब नाहि पढ़ा,
जब आहि पढ़ा, न पढ़यो तब हारण।
इम संतहि रेण कहै मन को,
हम तोहि कहयो दुख का इहु कारण।१४९।

× × ×

त्रिगना सु खराब करै सभ को,
वडियो वडियो कि लगी वहि पाछे।

रिख सिद्ध मुनी सरबंग गुनी कित,
भोग बिलास विखै सुख बाछे।
त्रिशना नित अंतर दाहि करे,
नर ऊपर ते वहि दीसहि आछे।
तजि आतम ग्यान अमी रस को,
नर संतहि रेण सु पीवहि छाछे।५३६।

(अनभै-अम्रित-सागर ग्रंथ)

× ×

भगती बलि ग्यान विराग लहै,
भगति वलि जोग सु मोख प्रकासी।
भगती उर ग्यान विराग जने,
भगति बलि आई मिलें अविनासी।
भगती सु प्रिय परमेस्वर की,
इम भाखति है गुर संत उदासी।
इम संतहिं रेण कहै नर की,
भगती बिन नाहिं कटै भव फांसी।

(वही)

संत निश्चलदास (विचार-सागर)

चित छाया माया विषे, अधिष्ठान संयुक्त।
मेघ व्योम सम ईश सो, अन्तर्यामी मुक्त ॥८९॥
अन्तर बाहिर एकरस, जो चेतन भरपूर।
विभु नभ सम सो ब्रह्म है, नहिं नेरे नहिं दूर ॥९०॥
चतुर्भांति चेतन कह्यो, तामें मिथ्या जीव।
पुण्य पाप फल भोगवै, चित् कूटस्य सुशीव ॥९१॥
कर्मी छाया देत फल, नहिं चेतन में योग।
सो असंग इक रूप है, जानें भिन्न कुलोग ॥९२॥

× × ×

कवित्त—जीव ईश भेदहीन चेतन स्वरूप माहिं,
मायासो अनादि एक शांत ताहि मानिये।

सत ओ असत ते विलक्षण स्वरूप ताके,
ताहि को अविद्या और अज्ञानहू बखानिये ।।
चेतन सामान्य न विरोधी ताको साधक है,
वृत्ति में आरूढ़ वा विरोधी वृत्ति जानिये ।
माया में आभास अधिष्ठान अरु माया मिल,
ईश सरवज्ञ जग हेतु पहिचानिये ।।१५४

× × ×

साधन सामग्री बिना, उपजै झूठ सु होय ।
बिन सामग्री उपजै, यों तिहि मिथ्या जोय ।। ७

बिन सामग्री उपजत यातैं । सनसृष्टि सब मिथ्या तातैं ।।
देशकाल को लेश न जामैं । सर्व जगत् उपजत है तामैं ।।८
स्वप्न समान झूठ जग जानहु । लेश सत्यता कूं मति मांनहु ।।
जाग्रत माहिं स्वप्न नहिं जैसे । स्वप्न माहिं जाग्रत नहिं तैसे ।।९

लाख हजारन कल्प को, यह उपज्यो संसार ।
याते ज्ञानी मुक्ति ह्वै, बन्धे अज्ञ हजार ।।११

झूठो स्वप्न समान जो, क्षण घटिका ह्वै याम ।
बद्ध कौन को मुक्त है, श्रवणादिक किह काम ।।१२

× × ×

प्रथम विवेक विराग पुनि, शमादि षट् सम्पत्ति ।
कही चतुर्थ मुमुक्षुता, ये चव साधन सत्ति ।।१२

अविनाशी आतम अचल, जग तातै प्रतिकूल ।
ऐसो ज्ञान विवेक है, सब साधन को मूल ।।१३

ब्रह्मलोक लौं भोग जो, चहै सबन को त्याग ।
वेद अर्थ ज्ञाता मुनी, कहत ताहि वैराग ।।१४

शम दम श्रद्धा तीसरी, समाधान उपराम ।
छठी तितिक्षा जानिये, भिन्न-भिन्न यह नाम ।।१५

मन विषयन ते रोकनों, शम तिहिं कहत सुधीर ।
इन्द्रियगण को रोकनों, दम भाषत बुधवीर ।।१६

सत्य वेद गूरु वाक्य हैं, श्रद्धा अस विश्वास ।
समाधान ताकूं कहत, मन विक्षेप को नाश ।।१७।।

साधन सहित कर्म सब त्यागै । लखि विष सम विषयन तैं भागै ।।
दृग नारी लखि ह्वै जिय ग्लाना । यह लक्षण उपराम बखाना ।।१८।।

आतप शीत क्षुधा तृषा, इनको सहन स्वभाव ।
ताहि तितिक्षा कहत हैं, कोविद मुनिवर राव ।।१९।।

षट् शमादि सम्पत्ति को, भाषत साधन एक ।
इम नव नहिं साधन भनै, किन्तु चारि सविवेक ।।२०।।

× × ×

गंग पयोनिधि कबहुं न त्यागत । जाते रसिक सुमन अनुरागत ।
विधि तिलोत्तमा अपर बनाई । हन्यो सुन्दर जिन सों न सुहाई ।।३३।।

मिंहिदी जावक कर पद रागा । तिनको मैं किय निमिष त्यागा ।
और भोग तिनके उपकरना । भोगैं सबै निकट भौ मरना ।।३४।।

अहो मूढ़ को मम सम जग मैं । भो लम्पट अब लग मैं भग मैं ।
गोलो मलिन मूत्र ते निशि दिन । स्रवत मांस मय रुधिर जुछत बिन ।३५

चर्म लपेट्यो मांस मलीना । ऊपरि बार अशुद्ध अलीना ।।
इन मैं कौन पदारथ सुन्दर । अति अपवित्र ग्लानि को मन्दिर ।। ३६।।

तिय की जंघ जघन्य सदाही । रम्भाकरि कर उपमित जाही ।।
आर्द्रमूत को मनु पतनारो । रुधिर मांसत्वक अस्ति पसारो ।।३७।।

लगत जु नीके स्थूल नितम्बा । तिनके मध्य मलिन मल बम्बा ।
तटता केते अति दुगन्धा । ह्वै आसक्त तहां सो अन्धा ।। ३८ ।।

अधर जो थूक लार से भीजत । तजि ग्लानी निज मुख मैं दीजत ।
दृष्ट मदा नारी मदिरा भजि । शुद्ध अशुद्ध विवेक दियो तजि ।।३९।।

कहत नारि के अंग जु नीके । करत विचार लगत यों फीके :
कपट कूट को आकर नारी । मैं जानी अब तजन विचारी ।। ४०।।

× × ×

ह्वै एकान्त देश में अस सुख । युवती पुत्र धन संग सदा दुख ।
युवती कुरूप कुबोलनि जाके । सदा शोक हिय ह्वै यह ताके ।।५२।।

प्रभु पुरीष पण्डा यह रण्डा । दिय मुहि कौन पाप को दण्डा ।
बोलत बैन व्याल काग नीके । भेड़ भैंसि न्योरो नागिनि के ।। ५३

भूत भावती ऊंटनि को है । बोल खड़ी को सुन खर मोहै ।।
रैनि जु ऊंचे स्वरहि उचारत । स्यार हजारन सुनत पुकारत ।। ५४

निरपराध तिय बिन बैरागा । तज तन बनत पाप जिय लागा ।
रहत दुखी यों निशि दिन पिय मन । तिय कुबोल सुनि लखि कुरूप तन ।

कामिनी ह्वै जु सुरूप सुबानी । सो कुरूप ते ह्वै दुख दानी ।
चमक चान की पियहिं पियारी । अर्थ धर्म नशि मोक्ष बगारी ।। ५६

मीठे बैन जहर युत लड्डुवा । खाय गमाय बुद्धि ह्वै भड्डुवा ।।
और कछू सुपनहु नहिं देखै । काक अन्ध इक कामिनी लेखै ।। ५७

धन कछु मिलै जु बाहिर घर में । सो सब खरचै कामिनी घर में ।
भूषण वस्त्र ताहि पहिरावै । गुरु पितु तात न यादिहु आवै ।। ५८

पायस पान मिठाई मेवा । देय भक्ति ते तिय निज़ देवा ।
नेह नाथ नाथ्यो नहिं छटैं । तिय किशान पिय बैलहिं कूटैं ।। ५९

ज्यों सूवा पिंजरे बांधुवा । सिखयो बोलत शुद्ध अशुधवा ।।
तैसैं जो कछु नारि सिखावत । सो गुरु मात पिताहिं सुनावत ।। ६०

जैसे मोर मोरनी आगे । नाचि रिझाय आप अनुरागे ।
तैसे विविध वेष करि तिय को । मन रिझाय रीझत मन पियो को ।।६१

जब दुहूंन को मन अनुराग्यो । तबहिं मदन मदिरा मद जाग्यो ।
भये बावरे बसनहु त्यागे । अति उन्मत घूरत पुनि लागे ।।६२

प्रेम रूप धरि लग्न अमंगल । भिरि फिरि भिरत मेष मनु दंगल ।
ज्यों लोटत मद्यपी मतवारो । गिनत मलीन गलीन न नारो ।।६३

त्यों नर नारि मदन मद अंधे । अति गलीन अंगन में बंधे ।
करत मदनमद भ्रम जे मनकूं । ह्वै अचर जसु नित्यागी जनकूं ।।६४

नशै मदन मदते मति नर की । लखत न ऊँच नीच पर घर की।
तियहु बावरी मदन बनाई । क्रिया दुरवद जिहिं ह्वै सुखदाई ।६५

प्रबल काम मदिरा मद जागै। तब द्विज तिय धान कते लागै।
पिये मदन मदिरा नर नारि। ऐसै करत अनन्त खुवारी ॥६६

काम दोष यों नरहिं बिगोवत। सोइ प्रगट सुन्दरि तिय जोवत।
याते अति सुरूप तिय दुखदा। ताको त्याग कहत मुनि सुखदा ॥६७

जो सुरूप तिय मे अनुरागत। विषम दुखद पेखि नहिं भागत।
उभय लोक की करत सुहानी। मुनि जन गन गुन साख बखानी ॥६८

वीर रसात्मक अभिव्यंजना

दशम ग्रन्थ

क्रिपाल कोपीयं कुतको संभारी। हठी खानहयात के सीस भारी।
उठी छिच्छि इच्छं कढा मेझ जोरं। मनो माखनं मट्टकी कान फोरं ॥७

तहा नंदचंदं कीयो कोपु भारो। लगाई बरच्छी क्रिपाणं संभारो।
तुही तेग त्रिक्खी कढे जम्मदढं। हठी राखीयं लज्ज बंसं सनढं ॥८

तहां मातलेयं क्रिपालं क्रुद्धं। छकियो क्षोभ छत्री कर्‌यो जुद्ध सुद्धं।
सहै देह आपं महाबीर बाणं। करो खान बानीन खाली पलाणं ॥९

हठियो साहब चंद खेतं खत्रियाणं। हने खान खूनी खुरासान भानं।
तहां बीर बंके भली भांति मारे। बचे प्रान लैकै सिपाही सिधारे ॥१०

तहां साह संग्राम कीने अखारे। घने खेत मो खान खूनी लतारे।
न्रिपं गोपालयं खरो खेत गाजै। म्रिगा झुंड मद्धियं मनो सिंघराजै ॥११

तहां एक बीरं हरीचंद कोप्यो। भली भांति सो खेत मो पाब रोप्यो।
महा क्रोध कै तीर तीखे प्रहारे। लगै जौनि के ताहि पारै पधारे ॥१२

रसावल छंद—

हरीचंद क्रुद्धं। हने सूरसुद्धं।
भले बाण बाहे। बड़े सैन गाहे ॥१३

रसं रुद्र राचे। महां लोह माचे।
हने ससत्रधारी। लिटे भूप भारी ॥१४

तबै जीत मल्लं। हरीचंद भल्लं।
ह्लिदै ऐंव मार्‌यो। सुखेतं उतार्‌यो ॥१५

लगे बीर बाणं। रिसियो तेजि माणं।
समुह बाज डारे। सुवरगं सिधारे ॥१६

भुजंगप्रयात छंद—

खुलै खान खूनी खुरासान खग्गं।
परी ससत्रधारं उठी झाल अग्गं।
भई तीर भीरं कमाणं कड़क्के।
गिरे बाज ताजी लगे धीर धक्के ॥१७

बजी भेर भुंकार धुक्के नगारे।
दुहू ओर ते बीर बंके बकारे।
करे बाहु आघात ससत्रं प्रहारं।
डकी डाकणी चांवडी चीतकारं ॥१८

(वचित्र नाटक—अपनी कथा)

दोहरा—

तहा धूम्रलोचन चले चतुरंगन दलु साज।
गिर घेरिओ घन घटा जिउ गरज गरज गजराज ॥९४

धूम्रनैन गिरराज तट ऊंचे कही पुकार।
कै बर सुंभ न्रिपाल को कै लर चंड संभार ॥९५

रिपके बचन सुनंत ही सिंहा भई असवार।
गिरते उतरी बेग दै कर आयुध सभ धार ॥९६

सवैया—

कोप कै चंड प्रचंड चढी इत क्रुद्ध कै धूम्र चडै उत सैनी।
बान क्रिपानन मार मची तब देवी लई बरछी कर पैनी ॥
दउर दई अर के मुखि मै काटि ओठ दए जिमु लोह कौ छैनी।
दांत गंगा जमुना तन मिआम सो लोहू वहिओ तिन माहि
त्रिबैनी ॥९७

धाउ लगै रिसकै द्रिगध्म सुकै बलि आपनो खग्गु संभारिओ।
बीस पचीसक वार करे तिन केहरि को पगु नैकु न हारिओ ॥

धाइ गदा गहि फोरि कै फउज को घाउ सिवा सिर दैत के
मारिओ।
स्रिग धराधर ऊपर को जन कोप पुरंद्र नै बज्र प्रहारिओ ।।९८

सवैया—

कोप भई बरचंड महां बहु जुद्ध करिओ रन मै बल धारीं ।
लैकै क्रिपान महां बलवान पचार कै सुंभ के ऊपरि झारी ।
सार सो सार की धार बजी झनकार उठी तिह ते चिनगारी ।
मानहु भादव मास की रैन लसै पटबीजन की चमकारी ।२१८

घाइन ते बहु स्रउन परिओ वल छीन भइओ ग्रिप सुंभ को
कैसे ।
जोत घटी मुख की तन की मनो पूरन ते परिवा ससि जैसे ।
चंडि लइओ करि सुंभ उठाइ कहिओ कविने मुखि ते जसु ऐसे ।
रच्छक गोपिन के हित कान्ह उठाइ लइओ गिर गोधनु जैसे ।२१९

दोहरा—

करते गिर धरनी परिओ धर ते गइओ अकास ।
सुंभ संहारन के नमित गई चंड तिह पास ।२२०
(चंडी चरित उक्ति विलास)

भुजंगप्रभात छंद

झिमी तेज तेगं सु रासं प्रहारं ।
खिमी दामनी जाण भादो मझारं ।
उठे नद्द नादं कडक्के कमाणं ।
मच्यो लोह क्रोहं अभूतं भयाणं ।७।८४

बजे भेर भेरी जुझारे झणंके ।
परी कुट्ट कुट्टं लगे धीर धक्के ।
चवी चावडीयं नफीरं रणंकं ।
मनो बिचरं बाघ बंके बबक्कं ।८।८५

रसावल छंद—

चहूं ओर ढूके। मुखं मार कूके।
झंडा गड्ड गाढे। मचे रोस बाढे।१३।९०।

पर ससत्र झारं। चली स्रोण धारं।
उठे बीर मानी। धरे बान पानी।१५।९२।

महा रोस गज्जे। तुरी नाद बज्जे।
भरे रोस भारी। मचे छत्र धारी।१६।९३।

कटा कट्ट बाहै। उभै जीत चाहै।
महां मद्द माते। तपे तेज ताते।१९।९६।

रसं रुद्र राचे। उभे जुद्ध माचे।
करैं बाण अरचा। धनुर बेद चरचा।२०।९७।

संगीतभुजंगप्रयात छन्द—

कागड़दंग काती कटारी कड़ाकं।
तागड़दंग तीरं तुपक्कं तड़ाकं।
झागडदंग नागड़दं बागड़दंग बाजे।
गागड़दंग गाजी महां गज गाजे।३५।११२।

सागड़दंग सूरं कागड़दंग कोपं।
पागड़दंग परमं रणं पाव रोपं।
सागड़दंग ससत्रं झागड़दंग झारैं।
वागड़दंग बीरं डागड़दंग डकारैं।३६।२१३।

बेली बिद्रमछंद—

डह डहत डवर डमंकयं। लह लहत तेग त्रमंकयं।
ध्रम ध्रमत सांग धमंकयं। बवकंत बीर सुबंकयं। १२।१३४।

छुटकंत बाण कमाणयं। हहरंत खेत खत्राणयं।
डहकंत डामर डंकणी। कह कहक कूकत जुग्गणी।१३।१३५।

उफटंत श्रोणत छिच्छयं। बरखंत साइक तिच्छयं।
बवकंत बीर अनेकयं। फिकरंत मिआर बसेखयं।१४।१३६।

ढम ढमत ढोल ढमक्कयं । धम धमत सांग ध्रमक्कयं ।
वह बहत क्रुद्ध क्रिपाणयं । जुज्झैत जोध जुआणयं ।१६।१३८।
(चण्डी चरित द्वितीय)

× × ×

सवैया—

न्रिप जरासिंध बाच कान्ह सो ।।
जो बल है तुम मैं नंद नंदन सो अब पउरख मोहि दिखईयै ।
ठाढो कहा मुहि ओर निहारत भारत हो सर भाज न जईयै ।
कै अब डार हथिआर गवार संभार कै मो संग जूझ मच्चईयै ।
काहे कउ प्रान तजै रन मै बन मै सुख सो बछ गाइ चरईयै ।१८४३।

ब्रिजराज मनै कबि स्याम भनै उह भूप के बैन सुने जब ऐसे ।
स्री हरि के उर मै रिसि यो प्रगटी परसे घ्रित पावक तैसे ।
जिउ म्रिगराज स्रिगाल की कूक सुने बन हूंक उठे मन वैसे ।
ज्यों मटकी अरि की बतीया खटकै पग मै अट कंटक जैसे ।१८४४।

क्रुद्धत है ब्रिजराज इतै सु घने लखि कै तिह बान चलाए ।
कोप उते धनु लेत भयो न्रिप स्याम भनै दोऊ नैन उचाए ।
जो सर आवत भयो हरि ऊपरि सो छिन मै सब काटि गिराए ।
स्री हरि के सर भूपति कै तन कउ तनको नहि भेटन पाए ।१८४५।

आवत देख हलाजुध को सु भयो तबही न्रिप कोपमई है ।
जुद्धुही कउ समुहाइ भयो निज पान कमान सु तान लई है ।
ल्याइओ हुतो चपला सी गदा सर एकही सिउ सोऊ काट दई है ।
सत्र के मारनि की बलभद्रहि मानहु आस दुटूक भई है ।१८५१।

काट गदा जब ऐसे दई तबही बल ढाल क्रिपान संभारी ।
धाई चल्यो अरि मारनि कारनि संक कछू चित मै न बिचारी ।
भूप निहार कै आवत को गरज्यो बरखा करि बाननि भारी ।
ढाल दई सतधा करिकै करकी करवार त्रिधा करि डारी ।१८५२।

आवत भयो न्रिप स्याम के सामुहे तउ धनु स्री ब्रिजनाथ संभार्यो ।
धाबत भयो इतते हरि सामुहे त्रास कछू चित मै न बिचार्यो ।
कान प्रमान लउ तान कमान सु बान लै सत्र के छत्र पै मार्यो ।
खंड हुइ खंड गिर्यो छिन मै मनो चंद को राहु ने मार बिदार्यो ।१८५५

छत्र कटिओ न्रिप को जबही तबही मन भूपत कोप भयो है।
स्याम की ओर कुद्रिसटि चितै करि उग्र सरासन हाथ लयो है।
जोर सो खैंचन लाग्यो तहा नही ऐच सकै कर कंप भयो है।
ले धनु बान मुरार तबै तिह चांप चटाक दै काटि दयो है।१८५६।
ब्रिजराज सरासन काट दयो तब भूपत कोपु कीयो मन मै ।
करवार संभार महा बल धार हकार पर्‌यो रिप के गन ।
तहा ढाल सो ढाल क्रिपान क्रिपान सो यों अटके खटके रन मै।
मनो ज्वाल दवानल की लपटै चटकै पटकै त्रिन जिउ बन मै ।१८५७।
(कृष्णावतार)

सेनापति (गुरु शोभा)

माहरू काहरू कोप कै जीव मैं ससत्र लै हाथ मै बेग धाए।
एक सो एक बलवंत सूरा सहस छिनक मै मारि रन मै गिराए।
लोथ पै लोथ तह डारि केती दई स्रोन को सुंब यउ उमडि आए।
परत है नीर गंभीर भारी कहूं मिलत है नीर इक तीर आए ।२४।६५।

लै कुतका कर मै क्रिरपान संभार कै खान हयात को मारियो।
ऐसी दई सिर मै तिह के मनो तोरिओ पहार गदान सो डारिओ।
मातो मतंग महा बलवान हनिओ छिन मैं रन माहि पछारिओ।
एक दई सु दई उह के फिरि दूसरी सो इक अउर सिंहारिओ।२६।६७।

लै बरच्छी कर मैं तबही मनो देख कुरंग को सिंह जो धायो।
मारि हकार बिदारि दीओ दल पेलत पेलत पेल चलायो।
टट कै ससत्र परे सबही कर लै जमधारि कितान को धायो।
घायल सार सुमार भयो सु नंद ही चंद गोबिन्द बचाओ ।२७।६८।

खडग संभार ललकार खत्री चडियो जाइ रन मै परिओ अति सुहायो।
लोथ पै लोथ तिह डारि केती दई छिनक मै अनिक बिधि लोह पायो।
बान ऐसे बहे घाव तन मै भए सूर तन मै महे भूमि आयो ।
अनिक रछा करी आप ताही घरी काल क्रिपाल ऐसे बचायो ।२१।६९।

साहिब चन्द गइंदन जो मन मै कर रोम तबै उठि धायो।
मारही मारि कहै मुख ते करवार संभारि कितो दल पायो।

जो करवार सुवार संभारि कै जुध को सूर कै सामुहे आयो ।
ताहू को वारि बिदारि हकारि के आपने वार सौ ताहि गिरायो ।२९।७०।

जैमल कोप चडियो रण मै कर मै बरछी तिरछी गहि लीनी ।
फौज मै धाइ परिओ खुनसाइ कै केतन के उर अन्तर दीनी ।
मारि लीए असवार किते अरि पेल दई चतुरंग नवीनी ।
धूम परी सगरे रण मै अब एक सवार यहै गति कीनी ।१६।५७।

रण मै धसि कै इम लोह कीउ न कीओ तिह मोह महा मन को ।
जिम सारंग माहि पतंग परै न डरै करि लोभ कछू तन को ।
रण मै इम धूम करी अत ही मनो खेलत कान्ह फागन को ।
इह भांति गुलाबु गुलालि लीए करि जाति जमात के डारन को ।१७५८।

माहुरिचन्द करवार संभारि कै टूम कै असुरण माह दीनो ।
आनि कै सुआर जो वार तापै करै पकरि कै ताहि तिह मारि लीनो ।
भाँति इह सूर के तानि मारे तहा आपने जीव को भै न कीनो ।
एक को मारि कै दोइ टुकड़े करै दोइ को रूप चतुरंग चीनो ।१८।५९।

करी इम जंग सुनि गंगरामं वही तेग कर मै लई बेग धायो ।
देत असवार को सीस पै आनि कै करत दूई टकि भुइ माहि पायो ।
मारि चतुरंग चउरंग केती-केती करी भूम लोटै परी भै दिखायो ।
धूम ऐसी परी भाज याही धरी काल को रूप इम सूर आयो ।१९।६०।

× × ×

भिरे बीर बीरं । परो भार भीरं ।
बगे बान तीरं । अधीरं बिदारे ।३२।७३ ।

बजै सार सारं । भड़ै चिनगिआरं ।
कड़के कमाणं । ना बानं समारे ।३३।७४।

छुटै कोप तोपं । भई सूर सोखं ।
मिलै ताहि मोखं । सु कोखं उजारे ।३४।७५।

सोई काम आयो । तिनै सूर घायो ।
सुरगे सिधायं । कीए लोह भारे ।३५।७६

× × ×

घाइल घूमत है रन मै जु लरै करि जोर कीओ घन सारा।
झूमत सूर गिरे धरि पै जु परिउ रन जोर महा बिकरारा।
स्रोन चलिओ तिनके तन ते जु धरी छवयो कर लोथ कनारा।
जो घन ते बरखा बरखै जु चलिओ दरवाह रकत को धारा।२८।३६४।

खेलत सूर महा रन मै बन मै मानो सिआम जी फाग मचाइओ।
दउरत सूर लीए करमै पिचकारन जो सु बंदूक चलाइओ।
स्रोनत धार चली तिनके तन ते मानहु लाल गुलाल लगाइओ।
बागे बने तिनके तन लाल मनो रंगरेज रंगे रंग लिआइओ।३०।३६६।

× × ×

तोप छुटे गरजै घन जो लरजै ही अग मानो बिज कडक्कै।
ठउर रहे जिहके उर लागत होत है छाती कै पाट पडक्कै।
या विध मो तहि गोला चलै टिक है नहीं सूरमा ताही के धक्कै।
राजन के अवसान गए जब आनंद कोटि ते तोप छुडक्कै।१२।४१७।

× × ×

डंकन घोर सुघोर भई सुनि कै पुरीआ सबही लरजी।
लरजे ससि भान भिआन भए किह कारन काजि चडिओ हरिजी।
त्रई लोक अलोक सबै लरजे सिवजी कैलास पति यो डरजी।
सुन सेस महेस सुरेस बड़े लरजे सिह गोविंद के डरजी।१३।६०९।

अगीराय—जंगनामा गुरु गोविंदसिंह

वान कपिध्वज भीम भुजान, क्रिपान सु मानस को मरदाने।
मार के मीर अधीर किये, नित यौ डरपै कविराइ बखाने।
श्री गुरु गोविंदसिह चढ़ै, अरि के सुनके हियरे धहिराने।
तेज के त्रास ते यौं तरफै, थरके थिरिआ ज्यों पारद पाने।३।

जीते जिन दच्छन विचच्छन बनैत बांके,
नादर निपट अति आदर सिपाही को।
जाके त्राम वैरी बनवास उपहास लैत,
छाडे सुख आम उपहास जाही ताही को।

जोधा गुरु गोबिंद उदार आयो 'राइ कवि,'
गाहत न बार केई बार अवगाही को।
एक फौजैं फोर एक ओर एह जोर करैं,
तेरी तरवार है बिरंचि पादसाही को।

× × ×

बरखत बान बंदूख, तीर तरवार तिह।
छुटे तोप गज नाल गरज घुर नाल जिह।

उठै तुंड बहु मुंड, झुंड झाला झपट,
चढ़त सूर मुख नूर, कूर काइर दबट। ३३

मच्यो वीर धमसान, कान कीचक भयो।
खरे खेत जस हेत, ठाठ ठीको ठयो।

सय्यद मुगल पठान, सेख राजे लरे।
एक एक ते सरस पलट पग ना धरे।

गिरे लुत्थ पर लुत्थ जुत्थ जुग्गण जहां।
करैं घाउ पर घाउ ताउ तमकै तहां।

धम धुंद रवि रुक्यो, झुक्यो चहूँ ओर दल।
जहाँ गुरू गज धुक्यो, मुक्यो अजीम बल।

कवित्त—

तुरंग फौज तोर कै, मतंग मान मोर कै,
लरैं करैं अधीर सत्र जत्र पत्र पान कौ।
जिते समीप को गिनै, क्रिपान कोप ज्यों हनै,
प्रचंड खंड कित्त मुंड तेज पुंज भान को।

घटा छटा बिदारनी घनी धरा प्रहारनी,
कि काल बिआल काल कूट गूढ़ बिआन त्रान को।
प्रसिद्ध दीप देस मैं, पुरी गनेस सेस मैं,
गुरू गोबिंदसिंह की क्रिपान के समान को।

हीर—गुरु गोविंद बावनी

कल नहिं परत बिकल देस बंगस को,
पलक न लागे पल रूम सामे सामनी।
गोलकंड कंपति नगारन की धुनि सुनि,
बीजापुर बन्दर बसत बन जामनी।
आसमान दहल, दहल गिर्यो लंक हीर,
दरी मै दबत फिरै दसन जिऊं दामनी।
तेरे डर गोबिंद म्रिगिंद गुरु अरिनी की,
टोला टोल जाइ सो खटोला मांगे भामिनी

भभर्यो भभीषण भवन तजि भटकत,
ढहे पैर लंक की निशानन के बाजे ते।
पापर सो फूटत धराधर सु चर होत,
सिंधु अकुलात गज राजन के गाज ते।
बरनत हीर गुरु गोबिंद तिहारे त्रास,
दबत फिरति अरि कन्दरान भाजे ते।
चूर होत कमठ दरारे दाढ अटकत,
फटे फन सहस प्रबल दल साजै ते।

तों सों बैर बांधे धीर न धरति कहूं,
धौंसा की धुंकार धराधर धसकत है।
दल के चलत, महि हालत हलत कोल,
कूरम कहल्ल, फनी फन न सकत है।
प्रबल प्रतापी पातशाह, गुरु गोबिंद जी,
तेरे भय भारी भप ससकत है।
होत भूमचाल दिगपाल पाइमाल होति,
हलके हरल्ल हाथी माथे मतकत है।

नाहर समान झुकि झरि परे गुविंदसिंह,
खग गहि खण्ड कीनी खलत की खप्परी ।
हने घन घेर घमसान को घमंड कीनो,
घाइल घुमति घाइलन की धराधरी ।
रुध्र के कुंड ते निकस कालीं कुल ठाढी,
उपमा बढ़ी है 'हीर' अभिमति ते खरी ।
दल दसमाथ रघुनाथ को मनाइ मन,
मानो सीग्र सौहं दै हुतासन ते निस्सरी ।

मुक्खासिंह—गुरु विलास

कोप मलेच्छ चड़े अगनै । इम दुंदभ ढोल सु बोल बजाई ।
मारग जौन सो गौन करै । जल कूप नदी सर सूखत जाई ।४४।

कांपत सकल धरत भी भारा । सूरज गगन न जात निहारा ।
निरख लोग उचरत नर नारी । कांपत कुप्यो शहनशाह भारी ।४५।

यौं सु उचार दिआर दिवान मैं जुध समाज त्यार सु कीने ।
आयुध कोट अपार अनूपम चांप त्रिसूल निखंग नवीने ।
तोप तुफंग क्रिपान, सिलीमुख डार जमंधर है बहु लीने ।
आप सिंगार दयानिध साहब खालस को विविधा निज दीने । ६८।

अनिक भाँति दै शसत्र नवीने । निज निज ठौर वीर द्रिढ़ कीनै ।
तुपक तीर जंबूर अपारा । सकल मोरचा बांध सुधारा । ६८।

× × ×

सभै को सुनाई । क्रिपासिंध गाई ।
गहौ खग्ग पानी । मंडो जुध धानी । ९४।

प्रलोकं संवारो । समा सो निहारो ।
नहों चित कीजै । इहै जसु लीजै । ९५।

समं धरम जुद्धं । नहीं लोक मद्धं ।
जस कोट जग्गं । पुनं दान अंगं । ९६।

तसं जान छत्री । जुझे धार अत्री ।
डुलै नाहि चित्तं । लहै मोछ वित्तं । ९७

इहै बैन सारं क्रिपासिंध गाई । मंडियो जुद्ध भारो परी यौ लराई ।
निजं सावधानं सभै कौ कराई। दए सस्त्र असत्रं जुझो जोग जाई ।१००।।

× × ×

मनो टीड काते । घने दूत आए । सभै ओर रावं । मनो मेघ छाए ।
चलै सार सारं । तिसी जाइ इहां । जिमं सौज मासं । महां मेघ
जीहां ।।१०१।।

हलं वै हलै दत कै कै जु आवै । अंग बान जोरी मुखं मुख खावै ।
परी लोथ लोटै पुरं तीर खाई । मनो टांड गौनं दई है गिराई ।।१०२।।
कहू हाथ जांघ परी भूम सोहै । कहू सीस पागं धरं कान मोहै ।
कहू तीर तेगं परी है कटारी । चुभै वीर सोभै जिमं मच्छ जारी ।।१०३।।

× × ×

दोहरा—जब जोरावर सिंह जू देख्यो सभा बिचार ।
लै आइस गुर देव की चडिओ अनंद जीअ धार ।१५३।

चौपई—चाप बान प्रिथमै कर धरै । बड़े मेघ ज्यों बरखा करै ।
बिसख बान सर तीर बिदारे । सकल छेद अर कै गन डारै ।१५४।
बैस किसोर मनोहर मूरति । सर सो मारि करत अर चूरत ।
रकत प्रवाह चलियो तिह थानै । जन सरता बर दुतै प्रमानै ।१५५।
धुजा पताके रूख तिह जाही । बीच नसे है कितक सिधाही ।
जोरावर हरि जच्छ सु जुद्धा । अनिक भांति कीनो दृढ़ बिरुधा ।१५६।

झूलना छंद—
धनख नाराच जो तान रन मै अह्यो सत्र की सैन अनगन संहारी ।
सरन सो मार अपार केतक दई तुपक तरवार सो कित बिदारी ।
हने अरजाल काराल सै लगत है पीड़ कर मरत है हूं हंकारी ।
अंध काबंध इक सीस बिन डोलही परत है एक तिनको मझारी ।१५७।

एक को मारि दूजान कौ छेद कै तीसरे मद्धि करि बिसख जाही।
लगत है जास के अंग बलवान को तड़फ कर देह पल मै गिराही।
फिरत है अरन मै मेघ चपलान जिउं लखत कित जाइ लखबो न आही।
निरख कर अंग स्रो जोरावर सिंह को व्योम मै देव धनं धनं
कराही।१५८।

दोहरा--बिसख बान सर तुपक अस चलत लोह की धार।
जोरावर तिन मै फिरत गहै हाथ हथ्यार। १५९।

अडिल

दसो दिसा अरु निकट पहूचे आनि कै।
तब बरछा कर धर्यो अधिक पुन तान कै।
एक अरुन को मारि दूतै सु गिरावई।
हो या बिध जो रावरी सिंह रन पावई। १६०

सवैया

तीर तुफंग निखंगन काढ चलावत है सु पठान कई जू।
पुन मेघ किधो रित पावस की इत आवत है सिरजाल धई जू।
बरछा दूति कै चपला चमकै धुन बानन की बढ मेघ हई जू।
इह भाँति समाज बनियों रन को कि जुझार म्रिगेस की खेल जई जू। १६१

अडिल

पकर हाथ समशेर सिंह जिम गाज ही।
दसो दिसन अरु जाल स्याल जिम भाज ही।
इक जूझै रन थान बदन नहीं फेरही।
हो तिन पुरखन को नारि आन रन घेर ही। १६२

सवैया

सीस परे कित काट भटान के तुंड धरा कत मुंड सुहाए।
जाँघ करं पग रुंड कहूं खग्ग कमान लखे जब पाए।
ताज परे कत बाज अनूपम पील किधो गिर डील रताए।
सोभत है रण की छित भीतर भूम मनो इह भखन पाए। १८८

बीर खरे इक गाल बजावत तीरन सो इक छेदत कीने।
एक दुरे निज ओट दिवालन स्वास भरे इक पीड़त सीने।
दूर खरै पछुताप करै इक क्यो हम आन इतै तन दीने।
तीर नहीं यह काल दसा जनु जीवन है कछु नाम के लीने।१९९।

भाई संतोखसिंह—गुरु प्रताप सूरज

पाधड़ी छंद

इम पिता बाक को सीस धारि। हय चड्यो फिरति सूरनि मझार।
जित गोल तुरक को आइ जोर। तित जाति सुरमे दौरि दौरि ॥२६॥
तजि तुपक तुंड को तोरि तोरि। करि घोर जंग दै मोरि मोरि।
तीखन खतंग तबि छोरि छोरि। शत्रुनि सरीर गन फोरि फोरि ॥२७॥

प्रमाणका छंद

तुफंग छोरि छोरि कै। खतंग चाँप जोरि कै।
प्रहारि शत्रु गेरते। परे बिहाल टेरते ॥२९॥
तुरंग अंग भंग ह्वै। गिरंति सूर संग ह्वै।
तजंति फेर धाइ हैं। परंति एक आइ हैं ॥३०॥
कुलाहलं हला हली। वलीन मै चला चली।
सु ज़ोर पाइ आवते। थिरंति लागि घाव ते ॥३१॥
बिलंद कोप धारिहीं। उचारि 'मारि मारि' ही।
लगै तुफंग तीर ही। गिरंति धीर बीर ही ॥३३
परे तुरंग सूरमा। मिलंति जाति धूरमा।
दिखंति ना अंधेर मैं। धवाइ जे दरेर मैं ॥३४
तुफंग के तडाग ह्वै। खतंग के सड़ाक हैं।
मच्यो घमंड घोर ही। मरै न तुंड मोरि ही ॥३६

रसावल छंद

गुरु बैन श्रोणे। लए मानि तोने।
करी संग सैना। चले बीर भै ना ॥२६

जहाँ खान काला । बड़ो हेल घाला ।
गयो बीर लक्खू । महां ओज रक्खू ।।२७।।

तुफंगै चलाई । कि नेजे भ्रमाई ।
बड़े बाण मारे । सु लोहा करारे ।।२८।।

किते सांग मारैं । क्रिपा नैं प्रहारैं ।
तुफंगानि मेला । लियो झालि हेला ।।२९।।

खरे थंभ जैसे । हले सो न कैसे ।
अरे होइ सोहैं । करी बंक भोहैं ।।३०।।

दडा दाड गेरैं । तुरंगैं घनेरैं ।
उथल्लैं पथल्लैं । नहीं पाइ हल्लैं ।।३१।।

महाँ शसत्र खाए । रिपू ब्रिंद घाए ।
भयो जंग भारी । परी भूर मारी ।।३२।।

चले खग्ग खंडे । दुधारे प्रचंडे ।
करे खंड खंडे । घने ही घुमंडे ।।३३।।

भए रुंड मुंडे किनू जंग छंडे ।
कटी ग्रीव बाहू । परे भूमि मांहू ।।३४।।

किसू सीस काटा । किनूं कोई डाटा ।
रिपू नेर होए । सु नेजे परोए ।।३५।।

तुफंगानि छोरि । किसू मारि गोरी ।
कि सांगं प्रहारी । भजे भीरु भारी ।।३६।।

महां लोह मांचा । लहू धूल राचा ।
किसू तुंड खंडा । कि सीसं विहंडा ।।३७।।

हथा हत्थ होए । रिपू कीनि ढोए ।
चलैं तीर तीखे । सु सरपं सरीखे ।।३८।।

भयो भूर नादं । करै सूर बादं ।
गुरू त्यार होए । महां जग जोए ।।३९।।

मधुभार छंद

लरिते सु बीर। बिधिते सरीर।
हुइ अग्र धीर। प्रविशंति तीर ॥२॥

तुपकैं तड़ाक। गुलकां सड़ाक।
लगि अंग फोर। उकसैं न थोर ॥३॥

गिरते बिहाल। बहि श्रोण लाल।
छुटके तुरंग। असवार भंग ॥४॥

गुर क्रोध धारि। बहु बान मारि।
टिकने न देति। बड जंग खेत ॥५॥

रद पीस पीस। दल ब्रिंद ईश।
सुभटानि प्रेरि। हुइ कै दलेर ॥६॥

जबि होति मार। गिरते सुमार।
ठटकंति हेरि। नहिं ह्वै अगेर ॥१०॥

श्री हरि गोविंद वीर बहादुर पनंग के सम बान चलावै।
ब्रिंद प्रहारति शत्रुनि डारति छूछ निखंग ह्वै और मंगावै।
लाघवता करि छोरति हैं इक सार ही सार महां बरखावै।
एक को बेधति द्वै पुन तीनहु चार कि पंच, छठो सु गिरावैं।२३।

शूकति जाति सवेग सपंखन ज्यों चलि धावति तोप को गोरा।
ओट बचै नहिं कोट उपाव ते लोटति भ्रम परै तनु घोरा
पान न हालति, पान न जाचति, तूरन प्राननि देती है छोरा।
जांघ कटै कि भुजा कटि जाति, फुटै सिर भाल कि दै उर फोरा।२६।

छोरि तुफंग हजारनि को, गुलकां घन ओरनि ज्यों वरखावैं।
फेर वरूद उताइल डालति, जो गज काढति ठोक उठावैं।
पाइ दुगोरनि को गुर सूर पलीतनि को करि जोर मिलावैं।
पावक डाभि उठावति नाद तडाभड यों इक वार चलावैं।२८।

क्रोध करैं चहूँ ओरन ते मिलि हेल को घालति शोर मचाए।
ब्रिंद तुफंग खतंगन को हति बेधति अंग तुरंग धवाए।

तोमर तुंग भ्रमाइ प्रहारति, यौ तुरकानि परै तहिं आए।
रैन मै दौ लगि काननि कौ तिहि देखि पतंग मरै जनु आए।२९।

नाद तुफंगन होति घनो नभ धूम महां पसर्यो द्रिशटावैं।
मानहु श्याम घटा घन की गन गोरनि ओरन ज्यों बरखावैं।
पावक होति वरूद भखे तड़िता सम दीख महा चमकावैं।
धूर ते पूरन होइ रह्यो पुरि, तूरन सूरनि हूर लिजावैं।३२।

चावंड चीकति मास अचैं, बहु बाइसु कंक अघावति हैं।
कूकर जबुंक कूकति है गन आमिख ऐंचति खावति हैं।
श्रोणत पीवति आनंद थीवति जोगनी नाचति गावति हैं।
दुदंभि, ढोल, पटे, तुररी गन नाद उठाइ बजावति हैं।३३।

पुरि आवनि को रुकि पंथ गयो बड ढेर डग्यो म्रितु घोरन को।
गन सूरनि के तन बीच परे, बहि श्रोण चल्यो दुहूँ ओरन को।
जनु गेरू के सैल श्रवैं बहु थानन होति नदी लघु बोरन को।
जनु दूसर कोट रच्यो लरिबे हित ओट करे रिपु मोरनि को।३४।

भैरव थान भयौ चहूँ ओरन आमिख हाड कि श्रोणत चाला।
हाथ कटे कित मुंड पर्यो कटि, जांघ कटि गन रुंड कराला।
आइ सकैं न उलंघ कै तांहि गिरे हय हेरि कि त्रास बिसाला।
छोरि तुफंगनि अंगन भंगति रंग सुरंग बनै ततकाला।३५।

सूर तुरंग शरीर परे म्रित, सैल मनिंद पर्यो द्रिशटावैं।
मुंड कटे जनु पाथर के गन जांघ भुजा कटि काठ लखावैं।
श्रोणत के झरने सु झरैं मिझ ब्रिंद परी जनु फेन उठावैं।
लांगुल ग्रीवन केस पवंगम ब्रिंद खरे त्रिन सो मन भावैं।३६।

यौं कहि पीस के दांत परे गुरु ऊपर एक ही वारि घने।
होति भए थिर थंभ मनो गन छोरति बान को कोप सने।
अग्र जु आवति तां उथलावति ज्यों बड़ गाज मुनार हने।
कान प्रमान लौ तानि चलावति मारे अनेक ही कौन गिने।

(गु. प्र-सू. ६ : ११ : २८)

दल जे दिलेश अचलेश दोऊ मिलि धाए,
धुरवा से धौंसा की धुंकार उठे घोरि घोरि।
बांधे बड़े ठट्ट भट्ट घट्ट के संघट्ट जुट,
लोह की चमक छटा छबि भांत कोरि कोरि ।
गोरे परे ओरे धूम अधिक अंधेरो धूर।
हलके हरौल हला हली उठै ठौरि ठौरि ।
तौ लौ ही बनाउ श्री गुबिंदसिंह राउ जौ लौ,
छारे न समीर तीर जेहि माहि जोरि जोरि।
(रा० ६: १: १३)

× × ×

गाढ़े गढ़ ढाहिबे को, दीह दल दाहिबे को,
खालसा उमाहिबे को दुरजन विहालका ।
तुरकनि को तेज त्रिन संचै सम वध्यो वहु,
ताँके छार करिबे कहु मानहु जोति ज्वालका।
मेघन के बीच बसे गाजि गाजि गाज जोइ,
दूजो देह धारे जनु आई खलु घालका ।
दास प्रतिपालका, सु खालिक की खालिका,
सरूप मनो काल का, प्रगट भई कालका। (रि० ६ : ४७ : १७)

× × ×

गुरु गुबिंदसिंह जी बिलंद हेल डारिओ ।
समूह सिंह संग लै तुफंग को संभारिओ ।
विरुद्ध जुद्ध सुद्ध ते सु क्रुद्ध होइ आइओ ।
कठोर धारि चांप को तुरंग को धवाइओ । ३५।

समूह बान तानि तानि कान ते प्रहारते ।
दडादडी तुरंग बीर भूम बीच डारते ।
वहै सवेग वायु ज्यों पुरातने तरोवरा ।
उखारि मूल गेरते भई संकीरणं धरा । ३६।

थिर्यो कि आइ अग्र जो सु प्रान हीन होवते।
भयान भर भमिका, भगैं भगैल जोवते,

नहीं जु नैन गोचरा बच्यो सुजिद राखकै ।
इते उते पलाइगे न सामुहा मिलाखकै ।

(रि० ६ : ११ ३७)

× × ×

संतरेण

दुहू ओर सेना खड़ी झूलें पटे निसान ।
चहू ओर मारु बजे देखहि देव बिवान ।
देखहि देव अकाश में मचियो जुद्ध अपार ।
किते सूरि कटि धरि परै करा न जाई सुधार । १२।

(गुरु नानक विजय)

× × ×

भरे सु बीर नूरं में बटे सु ताहि दूर में ।
पठाण बीर सूरमें चढ़े सो ललकार के ।
पटे निसान झूलई सुबीर मार फूलई मचा ।
सु हाल हूलई कितेकि भागे हार के ।

× × ×

सूर बीर भीर बड़े करि तलवार कढ़े ।
मार मार करें ताको और ना सुहात है ।
दौर दौर मारे भागे नेक ना संभारे तिनी ।
लाखों काट डारे लोहु अंगन चुचात हैं ।।१५।।

× × ×

कितेकि तेगे मारन सु सीस काट डारन सु ।
भयो जुध दारन सु कहा लौ बतावई ।
कितेकि तोड़े झारन बदूका फेरि मारन सु ।
बीदर बिदारन सु फुरती दिखावई ।
कितेकि सिर मारन सु गिरे तजि बारन ।
किते सु उठ मान न जुध ते पलावई ।
झराक सस्त्र झारनी कतेकि ललकार ही ।
कितेकि हाका मारन सु औरन बुलावई ।।२०।।

× × ×

कितेके अंग झरन सु तए लाल बरन न रन से
सु तरन सु भीम ज्यो पछानिये ।
करे कंमान थरर चले सु बान सरर
कितेकि भागे भरर सु देख बान जानिये।
कितेकि मारे बानन कितेकि मारे खानन।
कितेकि सो जबानन खपाए उर आनियो।

(नानक विजय)

केशोदास— (वार अमरसिंह)

भुजंग छंद

चढ्यो महाराज बज्यो सबल डंका ।
मानो रामदल चढ़यो तोरन सु लंका ।
छुटे तोप सु कोप सु परै गोले ।
मानो पके खेत बरखत ओले ।
छुटे रुहिकले औ जंबूरे जंजाइल
हूए सत्रू की सैन के लोग घाइल ।
छूटे बान बंदूख तीखे करारे ।
लरे खेत जस हेत जोधा सूर भारे।
गहे सूर क्रिपान अर तेज कत्ती ।
चली रुधर सरिता भई भूम रत्ती ।
अमरसिंह को तेज दिन दिन सवायो ।
जिन मारि मलेछ भट्टी खपायो ।
चले भाज भै खाइ भट्टी गुमानी ।
धूलकोट मैं धमे सभ बुधि हानी ।
हिये खोप कर फौज नै कियो हेला ।
जबै गाम को मार कै तुरत मेला ।

कहीं रहीं बंदूक कई हाथ सेले ।
कई तीर कमान तज दौर चाले ।
कहीं पग पयादे कहीं खरैं घोरे ।
कहीं सीस पगरी कहीं पाव जोरे ।
रुके गढ़ी मैं जाइ के कीयो जुद्ध भारी।
रुधे सिंह मानो बिकट बन मझारी ।
अमरसिंह को तेज दिन दिन सवायो ।
जिन मार मलेछ भट्टी खपायो ।

हुमत्त छंद

जुद्ध को ज़ोर भयो दुहुं ओर सु सूरन को चित्त होत हुलासा।
राम की सैन लरै जिम लंक सु राखस होत अनेक बिनासा।
इंद्र कूँ आइ भयो उतसाहु सु आनं छाय लियो घन वासा।
कसप पुत्र महा हरखयो रथ गडी कियो तहाँ देखु तमासा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

- उत्तरी भारत की संत परम्परा — परशुराम चतुर्वेदी
- गुरुमुखी लिपि में हिन्दी साहित्य — डॉ० जयभगवान गोयल
- गुरुमुखी लिपि में हिन्दी काव्य — डॉ० हरिभजनसिंह
- गुरु प्रताप सूरज के काव्य पक्ष का अध्ययन — डॉ० जयभगवान गोयल
- गुरु गोबिंदसिंह का वीरकाव्य — ,,
- गुरु गोबिंदसिंह विचार और चिंतन — ,,
- गुरु विलास (सं) — ,,
- गुरु नानक प्रकाश (सं) — ,,
- संक्षिप्त गुरु प्रताप सूरज (सं) — ,,
- जंगनामा गुरु गोबिंदसिंह (सं) — ,,
- गुरु शोभा (सं) — ,,
- प्राकृत और अपभ्रंश का डिंगल साहित्य पर प्रभाव — डा० गोवर्द्धन शर्मा
- पोद्धार अभिनन्दन ग्रन्थ
- ब्रज भाषा काव्य में प्रेमा भक्ति — देवीशंकर अवस्थी
- ब्रज भाषा का नायिका भेद — प्रभुदयाल मित्तल
- ब्रज भाषा रीति शास्त्र कोश — जवाहरलाल चतुर्वेदी
- मध्यकालीन हिन्दी काव्य अलंकृत कविता और मतिराम — डॉ त्रिभुवनसिंह
- मध्यकालीन हिन्दी में शृंगार सामग्री — डॉ० मालती देवी महेश्वरी
- मध्यकालीन शृंगारिक प्रवृत्तियां और हिन्दी काव्य-धारा में प्रेम-प्रवाह — परशुराम चतुर्वेदी

- मध्यकालीन बोध का स्वरूप — आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी
- रसाभास का विवेचन हिन्दी रीतिकाल के परिवेश में — डॉ० प्रशान्तकुमार
- राजस्थान का पिंगल साहित्य — मोतीलाल मेनारिया
- राजस्थानी भाषा और साहित्य — ,,
- राजस्थानी साहित्य कुछ प्रवृत्तियां — नरेन्द्र भागवत
- राजस्थानी साहित्य और संस्कृति — मनोहर प्रभाकर
- रास और रसान्वयी काव्य — डॉ० दशरथ ओझा, डॉ० दशरथ शर्मा
- राम-भक्ति साहित्य में मधुर-उपासना — डॉ० भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव'
- रीतिकालीन अलंकार साहित्य का शास्त्रीय विवेचन — डॉ० ओमप्रकाश शर्मा
- रीतिकालीन कविता में भक्ति तत्त्व — डॉ० ऊषा पुरी
- रीतिकालीन कवियों की प्रेम-व्यञ्जना — डॉ० बच्चनसिंह
- रीतिकाव्य की भूमिका — डॉ० नगेन्द्र
- रीतिकाव्य — डॉ० जगदीश गुप्त
- रीतिकालीन कविता और शृंगार रस का विवेचन — डॉ रामेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी
- रीतिकालीन निर्गुण भक्ति काव्य — पंजाबीलाल शर्मा
- रीति स्वच्छन्द धारा — डॉ० कृष्णचन्द्र वर्मा
- रीतिकालीन शृंगार-भावना के स्रोत — डॉ० सुधीन्द्र कुमार
- नायक-नायिका भेद — डॉ० राकेश गुप्त
- हिन्दी अलंकार साहित्य — डॉ० ओम्प्रकाश
- हिन्दी काव्य और उसका सौन्दर्य — डॉ० ओम्प्रकाश
- हिन्दी काव्य में शृंगार परम्परा और कवि बिहारी — डॉ० गणपति चन्द्र गुप्त
- हिन्दी रीति साहित्य — डॉ० भगीरथ मिश्र
- हिन्दी काव्य शास्त्र में शृंगार रस — डॉ० रामलाल वर्मा

- हिन्दी रीति-परम्परा के प्रमुख आचार्य — डॉ सत्यदेव चौधरी
- हिन्दी वीर काव्य — डॉ० टीकमसिंह तोमर
- हिन्दी साहित्य का इतिहास — आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
- हिन्दी साहित्य — आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी
- हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास — डॉ० गणपति चन्द्र गुप्त
- हिन्दी साहित्य का इतिहास — डॉ लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय
- हिन्दी साहित्य द्वितीय खंड — भारतीय हिन्दी परिषद् प्रयाग
- हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास भाग ६ — नागरी प्रचारिणी सभा, काशी

लेखक परिचय

जन्म : ३० सितम्बर, १९३१

छछरौली, जिला अम्बाला (हरियाणा)

एम० ए० हिन्दी (प्रथम श्रेणी)

पी-एच० डी० पंजाब यूनिवर्सिटी

१५ वर्षों से स्नातोकत्तर कक्षाओं को पढ़ा रहे हैं। सम्प्रति पंजाब यूनिवर्सिटीपोस्ट ग्रेज्यूऐट रीजनल सैण्टर, रोहतक में रीडर एवं हिन्दी विभाग के अध्यक्ष हैं। गुरुमुखी लिपि में उपलब्ध हिन्दी साहित्य को प्रकाश में लानेवाले अग्रणीय विद्वान।

लेखक की अन्य कृतियां—

१. गुरु प्रताप सूरज के काव्य पक्ष का अध्ययन शोध प्रबन्ध (पुरस्कृत)
प्रकाशक—कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र,

२. गुरुमुखी लिपि में हिन्दी साहित्य— भाषा विभाग पंजाब, पटियाला

३. गुरु गोविंदसिंह विचार और चिंतन, पंजाब विश्वविद्यालय, चंड़ीगढ़

४. वीर कवि दशमेश ,,

५. संक्षिप्त गुरु प्रताप सूरज (हिन्दी), (पुरस्कृत)
प्रकाशक—पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़

६. संक्षिप्त गुरु प्रताप सूरज (पंजाबी)—(यंत्रस्थ) ,, पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला

७. गुरु गोविन्दसिंह का वीर काव्य (सं) ,, गुरु गोविन्दसिंह फाउन्डेशन, पटियाला

८. 'गुरु शोभा' (सं)—पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़

९. जंगनामा गुरु गोविंदसिंह (सं०) ,, ,,

१०. 'गुरु विलास' (सं)—भाषा विभाग, पंजाब, पटियाला

११. वीर अमरसिंह (सं) ,,

१२. गुरु नानक प्रकाश भाग २ ,,

१३. प्रसाद और उनका काव्य

लेखक परिचय

जन्म : ३० सितम्बर, १९३१

छछरौली, जिला अम्बाला (हरियाणा)

एम० ए० हिन्दी (प्रथम श्रेणी)

पी-एच० डी० पंजाब यूनिवर्सिटी

१५ वर्षों से स्नातोकत्तर कक्षाओं को पढ़ा रहे हैं। सम्प्रति पंजाब यूनिवर्सिटीपोस्ट ग्रेज्यूऐट रीजनल सैण्टर, रोहतक में रीडर एवं हिन्दी विभाग के अध्यक्ष हैं। गुरुमुखी लिपि में उपलब्ध हिन्दी साहित्य को प्रकाश में लानेवाले अग्रणीय विद्वान।

लेखक की अन्य कृतियां—

१. गुरु प्रताप सूरज के काव्य पक्ष का अध्ययन शोध प्रबन्ध (पुरस्कृत)
प्रकाशक—कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र,

२. गुरुमुखी लिपि में हिन्दी साहित्य— भाषा विभाग पंजाब, पटियाला

३. गुरु गोविंदसिंह विचार और चिंतन, पंजाब विश्वविद्यालय, चंड़ीगढ़

४. वीर कवि दशमेश ,,

५. संक्षिप्त गुरु प्रताप सूरज (हिन्दी), (पुरस्कृत)
प्रकाशक—पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़

६. संक्षिप्त गुरु प्रताप सूरज (पंजाबी)—(यंत्रस्थ) ,, पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला

७. गुरु गोविन्दसिंह का वीर काव्य (सं) ,, गुरु गोविन्दसिंह फाउन्डेशन, पटियाला

८. 'गुरु शोभा' (सं)—पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़

९. जंगनामा गुरु गोविंदसिंह (सं०) ,, ,,

१०. 'गुरु विलास' (सं)—भाषा विभाग, पंजाब, पटियाला

११. वीर अमरसिंह (सं) ,,

१२. गुरु नानक प्रकाश भाग २ ,,

१३. प्रसाद और उनका काव्य